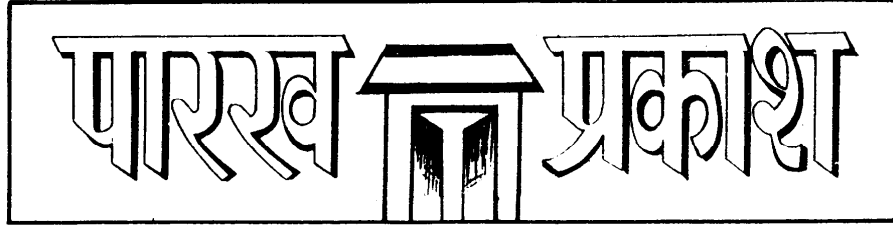
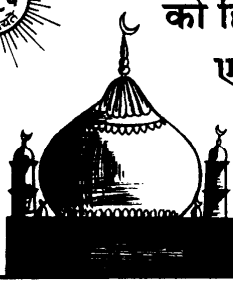




सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



साँचा सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हानि बीजक, साखी

वर्ष]

इलाहाबाद, आषाढ़, वि सं , जुलाई , सत्कबीराब्द

[अंक

तेरी यादों में सुमन श्रद्धा समर्पित

सत्य का संदेश तुम जग को दिये हो। कर सका कोई नहीं वैसा किये हो तुम मुलहजे में न करना बात सीखी। कह दिया सच-सच भले ही लगे तीखी सत्य की रहनी तुम्हारी थी अनोखी। इसलिए तुम कह सके थे बात चोखी तुम किसी भी पक्ष में चिपके नहीं थे। इसलिए निर्णय तुम्हारे सब सही थे धूल भी तुम पर उड़ाई खुब गयी है। पर तुम्हारी रोशनी बढ़ती नयी है तुम तराशे गये हीरे के तरीके। पर तुम्हारे सभी पहल उदोत दीखे व्यक्तित्व भी ऐसा तुम्हारा था निराला। सभी ने ही रीझ तुम पर दृष्टि डाला निर्गुणी केवल नहीं वैष्णव विरागी। सब तुम्हारे ज्ञान धन के दायभागी साम्प्रदायिक द्वंद्व जितने ही छटेंगे। मान्यताओं के प्रबल बंधन कटेंगे उते ही नित निकट होंगे हम तुम्हारे। जिते दिन बीते लगोगे नित्य प्यारे ब्रह्म सुख निर्वाण राम रहीम सारे। सत्य के पर्याय हैं निजरूप न्यारे कस्तुरी कुंडल बसे तुमने बताया। आप में ही मस्त होना है सिखाया जिंदगी की दौड़ तुमने मेट डाली। कर दिया विश्रान्ति जीवन में निराली जन्म जन्मों की पिपासा हुई तर्पित। तेरी यादों में सुमन श्रद्धा समर्पित



मसि कागद छुवों नहीं

भारतीय संत परंपरा में सद्गुरु कबीर का वही स्थान है जो स्थान आकाश में टिमटिमाते तारों के मध्य सूर्य का—सतत ज्वलंत, प्रकाशमान और अपनी दिव्य प्रभा से दूसरों को भी आलोकित करने वाला। धार्मिक पाखण्डों, ढकोसलों, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को भस्मीभूत कर देने वाला अग्निपिंड। कबीर ऐसे ज्वलंत मार्तंड हैं जिनके ज्ञान-प्रकाश की रश्मियां आज भी युगों-युगों से अज्ञानांधकार में सोये लोगों की प्रसुप्त चेतना को जाग्रत कर उनके अंदर एक नई स्फूर्ति एवं उत्साह का संचार कर रही हैं। कबीर किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। कबीर की ज्वलंत-निर्भीक वाणियां कबीर का परिचय स्वयं दे रही हैं। आज तो सदियों से दबे-कुचले लोग कबीरवाणी के आलोक में अपने सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक सफर का रास्ता स्वयं तय कर रहे हैं।

सद्गुरु कबीर सब तरफ से निस्पृह एवं निष्पक्ष रहे। न तो वे किसी मजहबी ईश्वर से सटकर चले और न ईश्वर के अवतार, पुत्र एवं पैगंबर से सटकर; और न ही किसी संप्रदाय, मत-मजहब, परंपरा से सटकर। उन्होंने अपनी बातों को मनवाने के लिए न किसी ईश्वर की दोहाई दी और न किसी ईश्वरीय वाणी की। वे तो सत्य के पथ पर अकेले चल पड़े थे और पीछे मुड़कर देखा भी नहीं कि कौन उनके साथ आ रहा है। वे तो सत्य के राही थे और स्वयं अपना हमराही थे।

कबीर साहेब ने अपने समय के प्राप्त विचारों की समीक्षा की थी और धार्मिक पाखंड एवं धर्म के नाम पर चलने वाले शोषण का खुलकर खंडन किया था, हिन्दू-मुसलमानों के बीच पल रहे विद्वेष-वैमनस्य को दूर कर उनके बीच की खाई को पाटकर दोनों को एक दूसरे के नजदीक लाने एवं धार्मिक एकता कायम करने का प्रयास किया था और हिन्दू समाज में ब्राह्मण-शूद्र के

बीच जो अहं-हीनत्व की भावना थी उसे दूर कर दोनों को मूलतः एक समान मनुष्य मानकर एक दूसरे के साथ मनुष्यता का व्यवहार करने की सीख दी थी।

यह सर्वविदित है कि कबीर साहेब ने लिखा नहीं था, कहा था और कहा वही जो तात्कालिक आवश्यकता थी। लिखने और कहने में यही अंतर होता है कि लेखक एकांत कमरे में बैठकर वही लिखता है जो उसके मन का भाव होता है, किन्तु कहना सदैव लोगों के बीच होता है और वही कहा जाता है जो उस समय की आवश्यकता होती है। फिर कबीर साहेब जैसे निष्पक्ष, स्वतंत्रचेता, सत्यद्रष्टा पुरुष के लिए तो कहना ही क्या! उन्होंने अपनी वाणियों में न तो किसी अलौकिक या तथाकथित अवतारधारी परमात्मा का गुणगान किया है और न उसके नख-शिख, कर-पद-मुख-कमल का वर्णन किया है, न तो पाप कटने के सस्ते नुस्खे बताये हैं और न मिथ्या महिमा की बात कही है। उन्होंने अपनी वाणियों में सर्वत्र असत्य का निराकरण किया है और सत्य का निरूपण-मंडन किया है। वह भी आवश्यकतानुसार। वे कहते हैं—दोहरा कथि कहैं कबीर, प्रतिदिन समय जो देखि। अर्थात् प्रतिदिन समय की मांग एवं आवश्यकता को देखकर मैं अपनी बात कहता हूँ। परंतु अपनी बात कहने के लिए मैं कागज, कलम, स्याही का प्रयोग नहीं करता, किन्तु चारों युग अर्थात् सब समय में जिस सत्य की महिमा है उसको मैं मुख से कहकर बताता, प्रकट करता हूँ। यथा—

मसि कागद छुवों नहीं, कलम गहैं नहिं हाथ।

चारिउ युग का महातम, कबीर मुखहि जनाई बात

कबीर साहेब इस साखी में सिर्फ इतनी बात कहते हैं कि चारों युगों में जिस सत्य की महत्ता है उसे मैं मुख से बोलकर बताता हूँ, उसके लिए मुझे कलम, कागज, स्याही की आवश्यकता नहीं। इस साखी में वे कहीं भी नहीं कहते कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ, अनपढ़ हूँ, परंतु इस साखी को लेकर एक-दूसरे की देखादेखी विद्वान कहलाने वाले लकीर पीटते जा रहे हैं कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, अनपढ़ थे। उनमें कबीर को अनपढ़ सिद्ध करने की मानो होड़ लगी है।

कबीर पर लिखने या पी-एच. डी. करने वालों में से अधिकतम लोग न तो कबीर के ज्ञान, दर्शन और आचारपक्ष पर ध्यान देते हैं और न इस बात पर ध्यान देते हैं कि कबीर ने कौन-सी बात किस संदर्भ में कही है। वे अपना अधिकतम समय-शक्ति इस खोज में लगा देते हैं कि कबीर-वाणी में छंद, रस, अलंकार की क्या कमी और त्रुटि है। वे यह भूल जाते हैं कि कबीर न तो कोई महाकाव्य लिख रहे थे और न किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच वक्तव्य दे रहे थे। वे तो आम जनता के बीच अपनी बात कह रहे थे और उसी भाषा में तथा उसी ढंग से कह रहे थे जिस भाषा और ढंग से अधिकतम लोग उनकी बात समझ सकें; और कबीर उसमें पूरी तरह सफल रहे हैं। कबीर की जिस वाणी को विद्वान लोग रसहीन वाणी कहते हैं उस वाणी ने तत्कालीन समाज में एक आंदोलन खड़ा कर दिया था।

‘मसि कागद छूवों नहीं’ के आधार पर पहले कबीर को अनपढ़ सिद्ध किया जाता है और फिर कहा जाता है कि कबीर की बातें अटपटी हैं, उनकी भाषा सधुक्कड़ी है, पंचमेल खिचड़ी है, समझ में न आने वाली है। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है कहने वाले सधुक्कड़ी का क्या अर्थ लगाते हैं वे तो वही जानें, परंतु वे भी यह मानते हैं और कहते-लिखते हैं कि कबीर संत थे। जब कबीर संत थे तब उनकी भाषा सधुक्कड़ी होगी ही। सधुक्कड़ी का अर्थ है साधु-संत द्वारा प्रयोग की जाने वाली या बोली जाने वाली भाषा। साधु-संत वह है जिसका दिल-दिमाग, मन-मस्तिष्क निर्मल हो और जिसका अपने आप पर पूर्ण संयम-नियंत्रण हो। ऐसा व्यक्ति किसी को खुश करने के लिए कुछ नहीं कहता। वह तो वही कहता है जो सच हो और सच बात कड़वी होती है, लोगों को न रुचती है और न पचती है। ऐसी सच बात जो कड़वी लगे, यदि वह सधुक्कड़ी है, तब तो निश्चित रूप से कबीर की बात सधुक्कड़ी है और सधुक्कड़ी बात सधुक्कड़ी भाषा में ही कही जायेगी, न कि गढ़-छीलकर।

कहा जाता है कि कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी है। महत्त्व भाषा का नहीं है किन्तु भाषा में कही जाने

वाली बात का है। भाषा की आवश्यकता इसलिए है कि श्रोता-जनता तक अपनी बात, अपने कथ्य को संप्रेषित किया जा सके, उन्हें अपनी बात समझायी जा सके। कबीर उसी भाषा का प्रयोग कर रहे थे जिस भाषा को अधिक से अधिक लोग समझ सकें। कबीर के सामने श्रोताओं के रूप में अधिकतम वे लोग थे जिन्हें सदियों से विद्या-शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया था, जिनके लिए पढ़ने-लिखने का द्वार बंद कर दिया गया था। इसलिए कबीर साहेब ने उस भाषा का प्रयोग किया जिस भाषा में कही गई बात को अधिकतम लोग समझ सकें, जिस भाषा में तत्कालीन समाज सांस ले रहा था।

कबीर साहेब संत थे और संत का काम होता है घूम-घूमकर जनता के बीच सत्य का संदेश पहुंचाना, उसे जागृत करना। कबीर साहेब ने वर्ष का लंबा जीवन पाया था और वे दूर-दूर तक भ्रमण भी किये थे। उन्होंने स्वयं कहा है—देश विदेशे हौं फिरा, गाँव गाँव की खोरि। इस भ्रमण के दौरान अनेक बोली-बानी के लोगों से उनका संपर्क हुआ, उनके साथ रहना हुआ। इस कारण से उनकी वाणियों में विभिन्न बोली-भाषा के शब्द स्वाभाविक रूप से आ गये। जिसके कारण उनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहा जाता है। परंतु कौन ऐसी भाषा है जिसमें दूसरी भाषाओं के शब्द घुल-मिल न गये हों। पूरी दुनिया में सर्वाधिक बोली जाने वाली अंग्रेजी भाषा में फ्रेंच, लैटिन, अरबी, फारसी, हिंदी आदि अनेक भाषाओं के शब्द घुले-मिले हैं, जिन्हें निकाल देने पर अंग्रेजी भाषा निर्जीव हो जायेगी। परंतु अंग्रेजी भाषा को खिचड़ी भाषा कोई नहीं कहता। आज की जो हिन्दी भाषा भारत में सर्वाधिक बोली जाती है उसमें अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी, पुर्तगाली आदि अनेक भाषाओं के शब्द उसी प्रकार घुल-मिल गये हैं जिस प्रकार दूध में पानी मिल जाता है, परंतु आज की हिन्दी भाषा को खिचड़ी भाषा कहने का साहस कोई नहीं करता।

वस्तुतः कबीर ने विद्रोह किया था जड़ व्यवस्था के विरुद्ध। कबीर के विद्रोह से जिन लोगों के स्वार्थ में बाधा पड़ रही थी उन जड़ व्यवस्थावादी एवं

सुविधाभोगी लोगों ने पहले तो कबीर की वाणी को, कबीर की आवाज को दबाने की पुरजोर कोशिश की थी, किन्तु जब कबीर की वाणी, कबीर की आवाज को न दबा सके तब उनकी खीज दूसरे रूप में प्रकट हुई और वे ही लोग कहने लगे कि कबीर की भाषा डांट-फटकार की भाषा है, सधुक्कड़ी है, पंचमेल खिचड़ी है, समझ में न आने वाली है।

कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी, खिचड़ी, समझ में न आने वाली न तो कबीर की समकालीन आम जनता ने कहा था और न आज की जनता कह रही है। कबीर के समय में भी आम जनता कबीर-वाणी को झूम-झूमकर गा रही थी और आज की जनता भी गा रही है।

कुछ लोग कहते हैं कि कबीर की बात समझ में नहीं आती। यदि कबीर की बात समझ में नहीं आती तो कबीर अपने समय में इतने प्रसिद्ध कैसे होते और कबीर पूरी दुनिया में कैसे पढ़े जाते? कबीर की जिस बात को आम जनता समझ रही थी उसे विद्वान कहे जाने वाले न समझ पाये, यह कितने आश्चर्य की बात है। हां, यदि कबीर की कुछ बातें समझ में नहीं आती तो यह बात अन्य लोगों पर भी लागू होती है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अनेक मंत्रों के अर्थ सायणाचार्य जैसे समर्थ विद्वान नहीं समझ पाये थे। तो इसके आधार पर क्या यह कह दिया जाये कि वेद किसी की समझ में नहीं आते। किसी की पूरी बात को समझने के लिए उस काल की भाषा-शब्दावली को समझना होगा और उस समय की परिस्थिति को समझना होगा जिस समय वह बात कही गयी थी। कबीर की बात समझ में नहीं आती यह कहने के पीछे सिर्फ पूर्वग्रह है, कबीर की बात को नकारने का मिथ्या प्रयास है और एक षड्यंत्र है कि लोग कबीर की वाणी को न पढ़ने पावें।

कबीर जनभाषा के कवि हैं। उन्होंने अपनी बात जनभाषा में कही है। सब समय समाज में अधिकतम जनभाषा का ही प्रयोग होता है क्योंकि वही जन सामान्य की भाषा होती है। कबीर से दो हजार वर्ष पूर्व महावीर स्वामी एवं तथागत बुद्ध ने जनभाषा में अपनी बात कहकर वैदिक कर्मकांड तथा जन्मना ऊंच-नीच की

भावना के विरुद्ध विद्रोह किया था। कुछ लोगों के मन में यह अहंकार रहता है कि आभिजात्य वर्ग की व्याकरणनिष्ठ भाषा में ही ज्ञान-विज्ञान की बातें कही जा सकती हैं। कबीर साहेब ने इस मिथ्या अहंकार को चुनौती देते हुए जनभाषा में अपनी बात कही और अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को बड़े सरल शब्दों में प्रकट कर दिया।

कबीर साहेब की भाषा के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री विश्वनाथ तिवारी लिखते हैं—
“कबीर की भाषा रिझाती उतनी नहीं जितनी खिझाती है। वह राह चलते टोक देती है। कविता के लिए कविता करना कबीर का उद्देश्य भी नहीं था। उन्होंने साहित्यिक परंपराओं के विरुद्ध सीधा विद्रोह किया था। उनकी उलटवांसियों में यह विद्रोह लक्षित किया जा सकता है।

“...कबीर की भाषा ‘सधुक्कड़ी’ है या ‘पंचमेल खिचड़ी’ है—इस प्रकार के फतवे देने से पहले यह स्वीकार करने की जरूरत है कि यह जीवन्त भाषा है—सामान्य जन समुदाय से सीधे संपर्क की भाषा है—सजीव भाषा है। यह वह भाषा है जिसमें कबीर का समकालीन जीवन सांस लेता है। अरूप को रूप देने में ही इस भाषा की सार्थकता नहीं है वस्तुतः की तीव्रतम अभिव्यक्ति देने में भी इस भाषा की सफलता देखी जा सकती है।

“...सब मिलाकर कबीर की भाषा की शक्ति असीम है। यह मुख्यतः विद्रोह की भाषा है, पर दूसरे रागमय संदर्भों की अभिव्यक्ति में भी असफल नहीं है। मन से सहज फूटने वाली यह भाषा सीधे मन में उतर जाती है।” (कबीर अंक, कबीर व्यक्तित्व और कर्तृत्व)

जिनके लिए अनुभव ज्ञान की अपेक्षा पुस्तकीय ज्ञान का ज्यादा महत्त्व है, जो पुस्तकीय ज्ञान को ही परम प्रमाण मानते हैं, ‘कागद की लेखी’ ही जिनके लिए परम ज्ञान हैं वे ‘आँखन की देखी’ कहने वाले कबीर की वाणी का मर्म कभी नहीं समझ सकेंगे। वे ‘मसि कागद छूवों नहीं, कलम गहाँ नहिं हाथ’ के आधार पर कबीर को बार-बार अनपढ़ घोषित करते रहेंगे। क्योंकि उनके

पास पढ़ाई-लिखाई की डिग्री है और कबीर के पास डिग्री नहीं थी, लेकिन उन्हें समझना चाहिए कि सत्य के उजागरण एवं साक्षात्कार के लिए डिग्री की आवश्यकता नहीं होती, उसके लिए तो आवश्यक होता है निष्पक्ष और प्रगल्भ बुद्धि, साधना एवं तपोमय जीवन, मन-वाणी-कर्मों की निर्मलता, स्वतंत्र चिंतन, संवेदनशील हृदय एवं गहन अनुभूति और ये सब कबीर के पास पर्याप्त मात्रा में थे।

जिन लोगों ने विद्या-शिक्षा का सारा अधिकार अपने हाथ में ले रखा था और ईश्वरीय वाणी का हौवा खड़ाकर एक षड्यंत्र के तहत सारा ज्ञान-विज्ञान एक वर्ग विशेष तक ही सीमित कर रखा था, और मानव समाज के विशाल अंग को सारे मानवीय अधिकारों से वंचित कर रखा था, उनके इस षड्यंत्र को कबीर ने अच्छी तरह पहचाना था। इस षड्यंत्र तथा सामाजिक व्यवस्था की जड़ता के विरुद्ध कबीर ने विद्रोह किया था। इस षड्यंत्र एवं सामाजिक व्यवस्था की जड़ता को बचाये रखने वाले व्यवस्थावादी सुविधाभोगी लोगों को यह हजम नहीं हो रहा था कि एक गरीब जुलाहे का बच्चा समाज के अगुवा कहे जाने वालों को उनकी जन्मजात वरीयता के लिए सरेआम चुनौती दे और नग्न सत्य का उद्घाटन करे। कबीर के विद्रोह से तिलमिलाये ऐसे लोगों की छटपटाहट एवं कबीर की क्रांति को निष्फल करने के उनके षड्यंत्र पर विचार करते हुए डॉ. भोलानाथ मिश्र लिखते हैं—

‘कबीर ने केवल सांस्कृतिक चेतना के स्तर पर ही विद्रोह नहीं किया बल्कि उन्होंने साहित्यिक रूढ़ियों, काव्य रूपों एवं भाषा के स्तर पर भी विद्रोह किया था। कबीर ने स्वयं कहा है “मसि कागद छूवों नहीं, कलम गहों नहीं हाथ।” (बीजक, साखी) इससे कबीर को समझने में कुछ गड़बड़ी हो गयी। कभी-कभी अपने बारे में कवि की लिखी हुई बात कवि को समझने में असुविधा पैदा कर देती है।...व्यवस्थावादी लोगों को अपने अनुकूल पड़ने वाली कबीर की एक बात मिल गयी। वे उनके पीछे हाथ धोकर पड़ गये। अब वे

कबीर के काव्य के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते और जो मन में आयेगा कह देंगे। कह देंगे कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, मूर्ख थे। बार-बार कबीर से कहलवायेंगे—‘मसि कागद छूवों नहीं, कलम गहों नहीं हाथ।’ फिर तो अपनी सामंती आदतों के तहत वे कबीर के काव्य और कबीर की भाषा पर बरस पड़ेंगे और कहेंगे कबीर की भाषा अटपटी है, गाली-गलौज है, ऊटपटांग है, पंचमेल खिचड़ी है, सधुक्कड़ी है आदि-आदि। वे शायद भूल जाते हैं कि कबीर ने विद्रोह किया था, संपूर्णक्रांति की थी, सांस्कृतिक मूल्यों को तोड़ने का संकल्प किया था। अपने युग में प्रचलित तमाम रूढ़ ज्ञान के प्रति हथौड़े का प्रहार किया था। उन्हें तो नये मूल्यों की स्थापना करनी थी और तत्कालीन जीवन का यथार्थ और बड़ा ही सजीव चित्र खींचना था। यह लोकजीवन के प्रति उनकी ईमानदार संवेदना थी जिसने उन्हें काव्य रचना के लिए मजबूर कर दिया था। एक जड़ व्यवस्था से विजड़ित, पीड़ित और दुखित जनजीवन ने उन्हें केवल प्रभावित ही नहीं किया था अपितु रुलाया भी था और हमेशा-हमेशा के लिए जागने को बाध्य कर दिया था।...उनको कागद की लेखी और कागद पर लिखने से क्या लेना-देना? और जब वे कहने लगते हैं कि “तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखन की देखी।” तो फिर उनके अवगुण को जानकर कबीर दीपक लेकर कुएं में क्यों गिरेंगे।’

सार निष्कर्ष यह है कि कबीर साहेब के पास कोई डिग्री भले न रही हो किन्तु वे अनपढ़ नहीं थे और उनकी भाषा न बेतुकी थी, न पंचमेल खिचड़ी, न सधुक्कड़ी थी और न समझ में न आने वाली, किन्तु उनकी भाषा जनभाषा थी। उनकी भाषा में विचारों के संप्रेषण की तीव्र क्षमता थी। इसीलिए उनकी बात सीधे लोगों के दिल तक उतर जाती थी। यदि ऐसा न होता तो कबीर साहेब अपने जमाने में इतने लोकप्रिय न होते और न उनका पूरे भारत में व्यापक प्रभाव पड़ता जिसके

भारतीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में कबीर, पृ. - ।

लिए पीपा जी को कहना पड़ा—नाव नवखंड परसिद्ध कबीरा।

एक बात और। कबीर हिन्दू थे कि मुसलमान? स्वयं कबीर साहेब ने अपने को न हिन्दू कहा है न मुसलमान। हां, उन्होंने अपनी वाणियों में स्वयं को अनेक बार जुलाहा अवश्य कहा है। जुलाहा मुसलिम बुनकरों को कहा जाता है। नीरू-नीमा जुलाहा दंपती के यहां उनका पालन-पोषण हुआ था। इसलिए कबीर का स्वयं को जुलाहा कहना स्वाभाविक है। प्रश्न होता है कि नीरू-नीमा कबीर के पालक पिता-माता थे या जन्मदाता।

अनेक संतों-विद्वानों का कहना है कि कबीर कुंवारी या विधवा ब्राह्मणी की संतान थे, जो रामानंद या किसी ब्राह्मण के आशीर्वाद से पैदा हुए थे। यद्यपि ऐसा कहने वाले यह प्रमाण नहीं दे पाते कि वह कुंवारी या विधवा ब्राह्मणी कौन थी, किसकी पुत्री या पत्नी थी। और क्या बिना पुरुष-संयोग के किसी के आशीर्वाद मात्र से किसी स्त्री को बच्चा पैदा हो सकता है? परंतु विद्वान कहलाने वाले इस पर विचार क्यों करेंगे!

वस्तुतः कबीर कुंवारी या विधवा ब्राह्मणी की संतान थे, इस निष्कर्ष के पीछे यह सड़ी मानसिकता काम कर रही है कि कबीर जैसा ज्ञानी संत नीरू-नीमा जैसे गरीब मुसलिम जुलाहा या गैर हिन्दू की संतान कैसे हो सकते हैं? उन्हें तो हिन्दू की संतान होना है और उसमें भी ब्राह्मण की, क्योंकि ब्राह्मणों के अलावा दूसरा ज्ञानी हो नहीं सकता। ज्ञान-विज्ञान पर सारा अधिकार तो ब्राह्मणों का ही है। इस मानसिकता में मनुष्यता का मूल्य नहीं रह जाता, मूल्य रह जाता है जन्मजात वर्णाभिमान का। ऐसी मानसिकता के लोग कभी स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि कबीर गैरहिन्दू, उसमें भी गरीब जुलाहा दम्पती नीरू-नीमा, की भी संतान हो सकते हैं, क्योंकि उनके ख्याल से मुसलमान म्लेच्छ हैं। वे यह कैसे हजम कर सकते हैं कि कबीर-जैसा उच्च सिद्ध ज्ञानी संत मुसलमान के घर जन्म ले सकते हैं।

दूसरी तरफ यह कहा जाता है कि नीरू-नीमा ने कबीर को लहरतारा तालाब में पाया नहीं था, किन्तु वे कबीर के जन्मदाता माता-पिता हैं। कबीर नीरू-नीमा के औरस पुत्र हैं। यद्यपि कबीर ने अपनी वाणियों में अनेक बार अपने को जुलाहा कहते हुए भी स्वयं को कहीं भी नीरू-नीमा की संतान नहीं कहा है। और न कबीर के समकालीन संतों ने कबीर के माता-पिता के रूप में नीरू-नीमा का नाम लिया है। हां, संत रैदास ने अवश्य कहा है—

जाके ईद बकरीद कुल गउरे बधु करहिं, मानीअहि सेख सहीद पीरा।
जाके बाप ऐसी करी, पूत ऐसी सरी, तिहुरै लोक परसिद्ध कबीरा
(रैदास बानी, संपादक डॉ. शुकदेव सिंह, पद)

अर्थात् जिसके कुल में ईद-बकरीद मनाया जाता है, गाय का वध किया जाता है, शेख, शहीद, पीर को माना जाता है, जिसके बाप की ऐसी करनी है वह कबीर तीन लोक में प्रसिद्ध हो गया।

परंतु यह कहते हुए भी संत रैदास ने यह नहीं कहा है कि नीरू-नीमा ही कबीर के माता-पिता हैं और कबीर नीरू-नीमा की ही संतान हैं। रही बात, ईद-बकरीद की, तो नीरू-नीमा का मुसलिम जुलाहा होने से उनके यहां ईद-बकरीद मनाना, नमाज पढ़ना स्वाभाविक है। आज भी कोई आदमी किसी बच्चे को गोद लेता है या अज्ञात बच्चे को पालता-पोषता है तो उस बच्चे के माता-पिता के रूप में उस दंपती का ही नाम लिया जाता है और उस दंपती की जाति ही उस बच्चे की जाति कही जाती है। संत रैदास ने जो कहा है—*जाके ईद बकरीद कुल गउरे बधु करहिं, मानीअहि सेख सहीद पीरा।* उसमें भी उक्त भाव का चित्रण ज्यादा लगता है, न कि इससे यह सिद्ध होता है कि कबीर नीरू-नीमा की ही संतान हैं। वैसे यदि कबीर सचमुच में नीरू-नीमा की ही औरस संतान हैं तो भी उनकी महानता में कोई आंच नहीं आती और कबीर साहेब के प्रति हमारी श्रद्धा में कोई कमी नहीं आयेगी। कबीर साहेब हमारे लिए परम पूज्य सद्गुरु हैं और बने रहेंगे। इतिहाससिद्ध प्रमाणों से कबीर साहेब नीरू-नीमा की औरस संतान

सिद्ध होते हैं, तो इस सच्चाई को हमें स्वीकारना ही होगा। सचाई को स्वीकार करके ही हम कबीर के सच्चे अनुयायी कहला सकते हैं, सचाई को नकार करके नहीं, क्योंकि सद्गुरु कबीर ने आजीवन सत्य का ही संदेश दिया है।

सद्गुरु कबीर के जन्मदाता माता-पिता चाहे अज्ञात हों चाहे नीरू-नीमा हों, इतना साफ है कि वे मनुष्य ही थे। क्योंकि सद्गुरु कबीर मनुष्य थे और मनुष्य के माता-पिता मनुष्य ही होते हैं, मनुष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं। आज हम देखते हैं कि पूरी दुनिया में मानव-मात्र का जन्म एक समान ही होता है। मनुष्य का कोई बच्चा न आकाश से उतरता है और न पृथ्वी फोड़कर प्रकट होता है। चूंकि सद्गुरु कबीर मनुष्य थे, इसलिए निश्चित तौर पर उनका भी जन्म उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार अन्य मनुष्यों का जन्म होता है। वे स्वयं कहते हैं—“तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्राण बियापै मोहू” (बीजक-रमैनी)। यह पहले लिखा जा चुका है कि कबीर साहेब ने अनेक बार अपने को जुलाहा कहते हुए भी अपने को न हिन्दू कहा है और न मुसलमान। बल्कि उन्होंने अपने को हिन्दू और मुसलमान मानने से स्पष्ट इंकार कर दिया है—

हिन्दू कहाँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्त्व का पूतरा, गैबी खेलै माहिं
कहैं कबीर सुनो रे भोंदू, बोलनहारा तुरुक न हिन्दू

इसलिए कबीर को हिन्दू-मुसलमान सिद्ध करने की अपेक्षा इंसान ही रहने दिया जाये, जो कि एक वास्तविकता है। प्रकृति मनुष्य के बच्चे को हिन्दू-मुसलमान या ब्राह्मण-शूद्र बनाकर पैदा नहीं करती, किन्तु मनुष्य के रूप में प्रकट करती है। हिन्दू-मुसलमान या ब्राह्मण-शूद्र तो बीच की बात है, कृत्रिम है और झूठ है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

झूठे गर्भ भूलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा।

कबीर न हिन्दू होने से महान हो जायेंगे और न मुसलमान होने से छोटे। कबीर केवल कबीर हैं और कबीर कबीर होने के कारण महान हैं। कबीर साहेब उस महानता को हर आदमी में देखते हैं। मानव मात्र मूल रूप में महान है ही। मानव मात्र में निहित उस महानता के उद्घाटन के लिए वे आजीवन जूझते रहे। उनकी यह चिंता रही है कि मानव गिड़गिड़ाना छोड़कर कैसे अपनी महानता को समझे और उसमें प्रतिष्ठित हो।

सच तो है मानव से बढ़कर कौन हुआ है और कौन होगा। अतिमानव, अलौकिक सत्ता की कल्पना करने वाला मानव ही है और उसके सामने दीन-हीन बनकर गिड़गिड़ाने वाला भी मानव ही है। किसी अतिमानव या अलौकिक सर्वशक्ति संपन्न सत्ता ने दुनिया में आकर अपने होने का प्रमाण नहीं दिया है, किन्तु अपनी महानता को न समझने के कारण मानव ने ही उसकी कल्पना की है। अपनी कल्पना में पड़कर वह भटक गया है। यदि मानव अपनी विषयासक्ति और कल्पना का त्यागकर अपनी ओर ध्यान दे तो वह अपनी महानता को समझकर उसमें प्रतिष्ठित हो सकता है।

मानव से बढ़कर तो क्या मानव के समान भी दूसरा कोई हो नहीं सकता। महाभारत में महर्षि वेदव्यास की स्पष्ट घोषणा है—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित् ।

अर्थात् मैं एक गोपनीय रहस्य बताता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर कोई नहीं है।

सद्गुरु कबीर मनुष्य होने के नाते ही संत हैं, सद्गुरु हैं और महान हैं। हम उनकी महानता को समझें और अपने बनाये सारे घरौंदों से बाहर निकलकर तथा सारे आग्रह, दुराग्रह, पूर्वग्रह को छोड़कर निष्पक्षता पूर्वक उनकी निष्पक्ष सत्यतापूर्ण वाणियों का मनन-चिंतन कर मानव मात्र की महानता को समझते हुए अपनी महानता को भी समझें और उसमें प्रतिष्ठित हों। यही कबीर साहेब का मानव मात्र के लिए संदेश है।

—धर्मेन्द्र दास

कबीर की समाज दृष्टि

लेखक—श्री दिनेश्वर प्रसाद

अपनी जिन विशेषताओं के कारण कबीर आज भी हमें प्रभावित करते हैं, उनमें एक विशेषता उनकी समाज दृष्टि है।

कबीर की समाज दृष्टि में दो बातें सम्मिलित हैं। पहली बात यह कि वे अपने समय के समाज को किस दृष्टि से देखते हैं और दूसरी बात यह कि आदर्श समाज के विषय में उनकी दृष्टि क्या है। दोनों बातें एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि दूसरी बात पहली बात पर आधारित है। कारण, अपने युग के समाज में उन्हें जो त्रुटियाँ या बुराइयाँ दिखाई देती हैं, उनसे मुक्त समाज ही उनकी कल्पना का आदर्श समाज है। लेकिन यहीं एक और सवाल उपस्थित होता है। वह सवाल यह है : वह अपने समय के समाज की जिन बातों को त्रुटियों या बुराइयों के रूप में देखते हैं, उन बातों को त्रुटियाँ या बुराइयाँ मानने का उनका आधार क्या है? ध्यान देने पर यह प्रतीत होगा कि यह आधार उनकी वह अद्वैतवादी दृष्टि है, जो सभी लोगों को समान या बराबर मानती है। इस विचार के आधार पर ही वे अपने समय के समाज की बनावट की जांच-परख करते हैं और यह बतलाते हैं कि उसमें आदमी और आदमी में भेद करने वाली बातें कौन-कौन सी हैं।

स्पष्ट है कि कबीर के समय के समाज को जाने बिना उनकी समाज दृष्टि को ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। इसलिए उनकी समाज दृष्टि की चर्चा के प्रसंग में सबसे पहले उनके युग की मुख्य बातों का उल्लेख जरूरी है।

कबीर भारतीय इतिहास के जिस युग में पैदा हुए थे, वह युग मुसलिम काल के नाम से जाना जाता है। उनके जन्म से बहुत पहले दिल्ली में मुसलिम शासन स्थापित हो चुका था। यों तो भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश दसवीं सदी में हो चुका था, लेकिन दिल्ली में

मुसलिम शासन स्थापित होने के बाद इसका प्रचार बहुत बढ़ गया था। कबीर के समय तक उत्तर भारत की आबादी का एक अच्छा-खासा भाग मुसलमान हो चुका था। स्वयं कबीर जिस जुलाहा जाति में पैदा हुए थे, वह एक-दो पीढ़ी पहले मुसलमान हो चुकी थी। लेकिन न केवल कबीर की जुलाहा जाति, बल्कि हिंदू समाज की जो भी दलित जातियाँ इस्लाम स्वीकार कर चुकी थीं, उनके पुराने संस्कारों में, रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वासों में बहुत बदलाव नहीं आया था। वे न पूरी तरह हिंदू थीं और न पूरी तरह मुसलमान। स्वयं कबीर की जुलाहा जाति में, जो इस्लाम क़बूल करने के पहले नाथपंथी जोगी (योगी) जाति थी, नाथपंथ और हठयोग की बहुत-सारी बातें पहले की तरह ही सुरक्षित थीं। हिंदू समाज में इस प्रकार की दलित जातियों का स्थान बहुत नीचा था और ये ऊंची जातियों के भेदभाव और अन्याय-अत्याचार का शिकार थीं। इसलिए यदि इनमें सामाजिक ग़ैर-बराबरी के प्रति विद्रोह का भाव था, तो कोई अचरज नहीं। कबीर के जन्म से पहले से ही इन जातियों की वाणियों में विद्रोह की भावना प्रकट होती आ रही थी।

कबीर के समय का हिंदू समाज न केवल ऊंची, मझोली और छोटी जातियों जैसे भागों में बंटा था, बल्कि उसमें धर्म संप्रदायों की संख्या भी बहुत बड़ी थी। स्वयं कबीर ने इन संप्रदायों का बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है। वह कहते हैं कि कोई वेद पाठी है, कोई उदासी है और कोई नग्न है। कोई योग की तरह-तरह की युक्तियों (उपायों) से अपना शरीर क्षीण करता है। कोई दीन बनकर भिक्षाटन करता है और कोई दान-पुण्य में लगा हुआ है। कोई मोरपंख धारण करता है; कोई सुरा (शराब) पान कर अपने को पहुंचा हुआ सिद्ध समझता है। कोई तंत्र-मंत्र और औषध (भांग आदि) की साधना में लगा हुआ है। कोई अपान वायु को वश में कर सभी सिद्धियाँ पाना चाहता है। कोई तीर्थ-व्रत

द्वारा अपनी काया को वश में करना चाहता है। कोई धुआं घोंटकर अपना शरीर काला कर रहा है।

ये जोगी, जती (यती), तपी और तीर्थों में भ्रमण करते रहने वाले संन्यासी, काया को कष्ट देने वाले लुंचित (जैन संन्यासी), सिर मुंडाने वाले मौनी और जटाधारी—सब-के-सब भ्रम में पड़े हुए हैं। वे यह नहीं जानते कि इस प्रकार के बाहरी आडंबरों से कुछ नहीं होता। वे यह नहीं समझते कि वे कुछ पाये बिना ही अंत में मर जायेंगे।

एक ओर हिंदू समाज का स्वरूप यह था। दूसरी ओर, देश का शासक मुसलिम समाज था, जो हिंदुओं को अपने से छोटा समझता था। इस समाज के प्रतिनिधि बादशाह, सरकारी कर्मचारी, क्राजी, मुल्ला और मौलवी अपने धर्म को एकमात्र सच्चा धर्म मानते थे और हिंदुओं के धर्मांतरण में विश्वास करते थे। वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि अल्लाह और ईश्वर में कोई भेद नहीं है तथा नमाज़ और पूजा एक हैं। वे यह नहीं समझते थे कि हिंदू और मुसलमान एक ही ईश्वर या अल्लाह की संतान हैं, इसलिए दोनों भाई हैं। धर्म के मामले में वे भी हिंदुओं की तरह बाहरी आडंबरों में विश्वास करते थे। वे रोजा, नमाज़, हज आदि की औपचारिकता को सच्ची ईश्वर भक्ति मान रहे थे। वे मस्जिद को तो खुदा का घर मानते थे, लेकिन उसके ही दूसरे घर मंदिर को अपवित्र मानते थे। ऐसा करते समय वे यह बात भूल जाते थे कि अल्लाह सर्वव्यापी है।

अपने समय के मुसलिम समाज की इस धर्म भावना पर कबीर ने बहुत बार विचार किया है। एक पद में उन्होंने कहा है कि नमाज़ से पहले लोग वजू करते हैं—हाथ-पैर और मुंह धोते हैं। वे (हिंदू लोग) माला

फेरते और तीर्थ आदि में नहाते हैं। ये लोग मस्जिद में सिर झुकाते हैं। लेकिन इन सब बातों से क्या लाभ? अगर दिल में कपट है, तो नमाज़ गुजारने और काबा जाकर हज करने से क्या होगा? ब्राह्मण एक वर्ष में चौबीस एकादशी करते हैं और क्राजी एक पूरा महीना रमजान में बिताते हैं। लेकिन यह तो बताओ कि वर्ष के बाकी ग्यारह महीने क्यों खाली छोड़ देते हो? क्या एक ही महीने में पूरा वर्ष समा जाता है? यदि खुदा केवल मस्जिद में रहता है, तो बाक्री मुल्क (स्थान) किसका है? यदि राम (ईश्वर) तीर्थों और मूर्तियों में निवास करता है, तो कोई दोनों में उसे कहां खोज सका है? हिंदू पूर्व दिशा में प्रभु का निवास मानते हैं, मुसलमान पश्चिम दिशा में। लेकिन दोनों-के-दोनों गलत हैं। भगवान तो हृदय में निवास करते हैं। उन्हें हृदय या दिल में खोजो। राम-रहीम का निवास वहीं है :

*क्या ऊजू जप मंजन कीए, क्या मसीति सिरु नाए।
दिल महि कपट निमाज गुजारै, क्या हजकाबै जाये।
ब्राह्मन ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी माँह रमजांना।
ग्यारह मास कहौ क्यूँ खाली, एकहि माँहि नियांना।
जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है, और मुलुक किस केरा।
तीरथि मूरति राम निवासी, दुहु महि किनहु न हेरा।
पूरब दिसा हरी का बासा, पच्छिमि अलह मुकांमा।
दिल महिं खोजि, दिलै दिल खोजहु, इहंई करीमां रामां।*

कबीर के समय के समाज में सिर्फ जाति-पांति, ऊंच-नीच और हिंदू-मुसलमान के भेद ही नहीं थे। उसमें धनी और गरीब जैसे भेद भी थे। किसी के पास अपार धन था, तो किसी को दो जून रोटी भी नसीब न थी। अधिकांश लोग गरीब थे और किसानों और मजदूरों के रूप में अपनी रोटी कमाते थे। धनी किसानों की संख्या बहुत कम थी। खेती करने वाले अधिकांश किसान, दिन-रात के कठोर परिश्रम के बावजूद, किसी तरह अपना परिवार चलाते थे। खेती योग्य भूमि की उपज के अनुपात में सरकारी लगान इतना अधिक था कि उनके लिए पूरे वर्ष का खर्च जुटा पाना कठिन था। खेती, घर-गृहस्थी, धनपतियों की सुख-सुविधाओं के सामान आदि से जुड़े कई प्रकार के काम थे, जिनके लिए कुशल और अकुशल मजदूरों की बहुत बड़ी संख्या

- इक पढ़हि पाठ इक भ्रमै उदास, इक नगन निरंतर रहै निवास।
इक जोग जुगुति तन होहिं खीन, ऐसै राम नाम संगि रहै न लीन।
इक होहिं दीन एक देहिं दान, इक करै कलापी सुरापान।
इक तंत-मंत औषध बान, इक सकल सिध राखै अपान।
इक तीर्थ ब्रत करि काया जीति, ऐसै राम नाम सुँ करै न प्रीति।
इक धूम घोटि तन होहिं स्याम, यूँ मुकति नहीं बिन रामनाम।
- जोगी जती तपी सन्यासी, बहुतीरथ भ्रमना।
लुंचित मुंचित मौनि जटाधर, अंति तरु मरना

मौजूद थी। किसानों की तुलना में इन मजदूरों (मजदूर जातियों) की आबादी कहीं अधिक थी। इन सब के सिवा न केवल भिखारी और घुमंतू साधु-जैसे समुदाय थे, बल्कि गुलाम या दास भी थे, जो खरीदे और बेचे जाते थे और मनुष्य होते हुए भी मनुष्य के सम्मान से वंचित थे।

इसके विपरीत सुलतान, राजा, सरकारी अधिकारी और कर्मचारी तथा बड़े व्यापारी थे, जो ऊंचे-ऊंचे महलों या सुविधायुक्त आवासों में रहते थे। वे कीमती पोशाक और आभूषण पहनते और भोग-विलास का जीवन बिताते थे। शासक वर्ग के पास अपार धन था, जो आम जनता के शोषण से जमा हुआ था। अमीर खुसरो ने ठीक ही लिखा है कि 'शाही मुकुट का हर मोती गरीब किसान की आंसू भरी आंखों से टपकने वाले खून की बूंद है।' यह प्रसिद्ध है कि कबीर का जन्म जिस तुगलक शासन के अंतिम चरण में हुआ था, उस वंश के एक बादशाह मुहम्मद तुगलक के समय 'चार मंत्रियों में से प्रत्येक को प्रतिवर्ष , से , टंका मिलते थे, सचिवालय के कर्मचारी, जो लगभग थे, कम-से-कम हजार टंका प्रतिवर्ष पाते थे। उनमें से कुछ को हजार टंका भी मिलते थे।' धनी और गरीब के बीच की यह खाई गरीबों के प्रति धनियों के व्यवहार में प्रकट होती थी। जिनके पास अधिकार, बल और पैसा था, वे गर्व से फूले रहते और गरीबों को सताते थे। वे गरीबों को तुच्छ समझते थे। वे उनका अपमान और शोषण करते थे। स्वयं कबीर गरीब परिवार में पैदा हुए थे। उनके लिए दो जून रोटी जुटा पाना कठिन था।.....

स्वयं निर्धन होने के कारण कबीर अपने जैसे धनहीन लोगों की दशा से परिचित थे। वह धनी लोगों के भोग-विलास, ठाट-बाट और अहंकार को पसंद नहीं करते थे। वे उन्हें फटकारने से भी नहीं चूकते थे। वे कहते हैं—'इस बात का गर्व न करो कि तुम ऊंचे महल में रहते हो। कल जब तुम मर जाओगे, तो तुम इस

ऊंचे महल में नहीं रहोगे। तुम्हें ज़मीन के अंदर गाड़ दिया जायेगा और तुम्हारे ऊपर घास जम जायेगी।' जो लोग सुखी जीवन बिताते हैं, धुले हुए उजले कपड़े पहनते और पान-सुपारी खाते हैं, उनका सुख बस इसी जीवन तक है। भगवान का नाम नहीं लेने के कारण वे स्वर्ग नहीं, बल्कि नरक (यमपुर) जाते हैं।'

मतलब यह कि धनपतियों के संबंध में कबीर के मन में कोई अच्छा भाव नहीं था। वे नहीं मानते थे कि कोई गरीब होने से छोटा और धनी होने से बड़ा हो जाता है।

यह सच है कि कबीर के समय के समाज में जाति, संप्रदाय, धर्म और धन संबंधी भारी भेद-भाव थे। अपने चारों ओर फैले इस तरह के भेदों को सामने रख कर ही उन्होंने समाज संबंधी बातों पर विचार किया है। उन्हें अपने समय के समाज में जो कुछ ग़लत और मानव-विरोधी लगा है उन्होंने उसकी तीखी आलोचना की है। इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी बताया है कि उनके अनुसार समाज का सही और आदर्श रूप क्या होना चाहिए।

इस संबंध में कबीर का मूल विचार यह है कि पूरी मानव जाति एक है। ...समाज में जाति, धर्म-संप्रदाय या पद और धन के आधार पर प्रचलित विभिन्न प्रकार के भेद अनुचित और अन्यायपूर्ण हैं। इस प्रकार के भेदों का विरोध किया जाना चाहिए और ऐसे समाज की रचना की जानी चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आत्म-सम्मान और बराबरी का जीवन जी सके।

कबीर की समाज दृष्टि को ठीक-ठीक और पूरी तरह समझने के लिए इसे तीन मुख्य प्रसंगों में विभाजित किया जा सकता है। वे प्रसंग हैं : () जाति, () धर्म-संप्रदाय और () धन।

यहां क्रमशः इन प्रसंगों पर विचार किया जा रहा है।

- . कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि परै भुइं लोटना, ऊपर जमसी घास
- . ऊजल कपड़ा पहिरि करि, पान सुपारी खाँहिं।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुर जाँहिं

. हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, के.एम. अशरफ, पृ.

जाति व्यवस्था

आज की तरह कबीर के समय के समाज में भी जाति के आधार पर ऊँच-नीच के भेदभाव मौजूद थे। यही नहीं, नीची या निम्न समझी जानेवाली जातियों में से अनेक को अछूत समझा जाता था और उनके स्पर्श ही नहीं, छाया तक को अपवित्र माना जाता था। इस संबंध में कबीर का मत बिल्कुल स्पष्ट है। सबके शरीर एक ही तरह रक्त, मज्जा, मांस और अस्थि से बने हैं। सब का जन्म एक ही रूप में होता है और मृत्यु के बाद सब की गति एक ही होती है। इसलिए कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र? सब तो एक जैसे हैं।

कबीर कहते हैं :

गरभ बास महि कुल नहिं जाती।
ब्रह्म बिंदु ते सभु उतपाती
कहुरे पंडित, बामन कब के होए।
बामन कहि कहि जनमु मत खोए
जो तू ब्राह्मण बभनी जाया।
तो आन बाट काहे नहीं आया
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध
कहु कबीर जौ ब्रमहु बीचारै।
सो ब्राह्मन, कहीअतु है हमारे

अर्थात्, जब कोई गर्भ में होता है, तो उसकी कुल या जाति नहीं होती। एक ही ब्रह्म बिंदु से सबकी उत्पत्ति होती है। ऐ पंडित! यह तो बताओ कि तुम ब्राह्मण कब से हुए? तुम अपने को ब्राह्मण कह कर अपना जन्म (जीवन) मत नष्ट करो। यदि तुम ब्राह्मणी से पैदा होने के कारण ही ब्राह्मण हो, तो तुमने किसी दूसरे मार्ग से जन्म क्यों नहीं लिया? (किसी के शरीर के जिस मार्ग से दूसरे सभी जनमते हैं, तुम उससे किसी अलग रूप में जनमते, तो तुम्हें दूसरों से श्रेष्ठ मान लिया जाता।) जब ऐसा नहीं है, तो तुम कैसे ब्राह्मण हो और हम कैसे शूद्र हैं? हम (शूद्र) कैसे गंदे लहू हैं और तुम कैसे पवित्र दूध हो? कबीर कहते हैं, ब्राह्मण और अब्राह्मण के भेद के विषय में हम तो एक ही बात मानते हैं। हम ब्राह्मण

उसी को कहते हैं, जो ब्रह्मज्ञानी है, जो ब्रह्म का विचार करता है।

अभिप्राय यह कि जन्म के आधार पर जाति का विचार गलत है। यदि जाति का संबंध जन्म से होता, तो इसके प्रमाण गर्भ से ही मिलने लगते। यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होता, तो वह गर्भ से ही वेद पढ़ कर आता, पेट न काहू वेद पढ़ाया।

सच तो यह है कि जन्म के समय पूरी मनुष्य जाति एक जैसी होती है। जन्म के बाद उसे बनावटी ढंग से अलग-अलग जातियों में बांट दिया जाता है। इस तरह हमारी पूरी जाति व्यवस्था बनावटी और अप्राकृतिक है। यदि कोई यह कहे कि ब्राह्मण की श्रेष्ठता इसी से प्रमाणित है कि वह सदियों से सात्त्विक जीवन जीता आ रहा है, उसके आचार और विचार, दोनों पवित्र हैं, तो यह बात भी गलत है। कबीर को इस जाति के लोगों का जीवन कहीं से भी धार्मिक नहीं लगता। ईश्वर और धर्म से उनका संबंध बहुत दूर का है—

जाकै पाइं जगत सभ लागै, सो पंडित जिउ घात करै
आपन ऊँच-नीच घर भोजन, घीन करम करि उदर भरहि
ग्रहन अमावस रुचि रुचि माँगहि, कर दीपकु लै कूप परहि

अर्थात्, जिस ब्राह्मण को बड़ा मान कर सारा संसार पांव लगता है, वह ब्राह्मण देवी-देवता की पूजा के नाम पर जीव हत्या करता है। वह अपने को ऊँचा कहता है, लेकिन नीच कहे जाने वाले लोगों के घर से भोजन लेता और धिनौने कर्म कर अपना पेट भरता है। ग्रहण और अमावस्या के दिन वह पूरी रुचि के साथ दक्षिणा मांगता है। उसके हाथ में ज्ञान का दीपक है, लेकिन वह पाप के कूप में गिरता है।

अपने समय के ब्राह्मणों के विषय में कबीर की सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि वे धर्म के नाम पर पशु बलि करते हैं। यही काम तो कसाई भी करते हैं। पंडित लोग भी कुशल कसाई हैं। इससे कुछ फ़र्क नहीं पड़ता कि वे स्नान कर तिलक लगाते और विधि-विधान से देवताओं की पूजा करते हैं, लेकिन उनके हाथ के एक ही झटके से पशुओं की आत्मा पल-भर में निकल जाती

और खून की नदी बहने लगती है। यह देखकर हंसी आती है कि उनसे सब लोग दीक्षा लेना चाहते हैं। लोगों का पाप काटने के लिए वे पुराणों की कथाएं कहते हैं, लेकिन जीव-हत्या जैसा नीच कर्म करते हैं। जो लोग गाय का वध करते हैं, उन्हें तुर्क (मुसलमान) कहा जाता है। इन ब्राह्मणों से तुर्क किस अर्थ में छोटे हैं? हे संतो! सुनो। कलियुग में ब्राह्मण ऐसे ही छोटे होते हैं उनमें दया का अभाव है :

संतो, पांडे निपुन कसाई

बकरा मारि भैंसा पर धावें, दिल में दर्द न आयी
करि असनान तिलक दै बैठे, विधि से देवि पुजाई
आतम राम पलक में बिनसे, रुधिर की नदी बहाई
अति पुनीत ऊँच कुल कहिये, सभा माँहि अधिकाई
इन्हते दीक्षा सब कोई माँगै, हाँसि आवै मोहि भाई
पाप कटन को कथा सुनावहिं, कर्म करावहिं नीचा
बूढ़त दोउ परस्पर देखा, जम लाये हैं खींचा
गाय बधे तेहि तुरका कहिये, इन्हते वे क्या छोटे
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, कलि में ब्राह्मन छोटे

हिंदू जाति व्यवस्था का एक निंदनीय पक्ष छुआछूत है। छुआछूत का विचार सबसे अधिक ब्राह्मणों में मिलता है। उन्होंने ही इसका पूरे समाज में प्रसार किया है। जब एक ही बिंदु से सारी सृष्टि पैदा हुई है, तो कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र? कौन पवित्र है और कौन अछूत? एक ही मिट्टी है, जिससे सब बने हैं और उनका कुम्हार भी एक है। कबीर को यह छुआछूत विचार बड़ा हास्यास्पद लगता है। इसका कोई तार्किक आधार नहीं है। यह मूर्खतापूर्ण है। कबीर इस पर ब्योरेवार विचार करते हैं और इसकी मूढ़ता स्पष्ट करते हैं।

पंडित लोग अछूत के हाथ का पानी नहीं पीते। वे अछूत द्वारा छुये हुए मिट्टी के बरतन को भी अपवित्र मानते हैं। लेकिन वे जो पानी शुद्ध मान कर पीते हैं, क्या वह शुद्ध है? वे मिट्टी के जिस घर में रहते हैं, क्या उसकी मिट्टी शुद्ध है? यदि विचार करें, तो मिट्टी अपने आप में अशुद्ध है। मिट्टी में सारी सृष्टि समाती रहती है।

एक बिन्दु ते सृष्टि उपज्यौ को ब्राह्मन को सूद्रा।

छप्पन करोड़ यादव और अठासी हजार ऋषि-मुनि मर कर इसी मिट्टी में विलीन हो गये। इसमें कदम-कदम पर पैगंबरों की लाशें गड़ी हैं। ये सभी सड़कर मिट्टी हो गये हैं। कबीर पांडे या ब्राह्मण से कहते हैं कि तुम्हारे पास मिट्टी के जो शुद्ध बरतन हैं, वे इसी मिट्टी से बने हैं। यही नहीं, तुम जिस पानी को शुद्ध मान कर पी रहे हो, उसे खूब सोच-समझ कर पियो। पानी में मछलियां, कछुये और घड़ियाल रहते हैं। वे वहीं बच्चे जनते हैं। बच्चे जनते समय उनके शरीर से निकला खून नदी, तालाब आदि के पानी में भरता है। पशु और मनुष्य की लाशें उसी में सड़ती हैं और उसी में अपना नरक बहाती हैं—

पांडे बूझि पियहु तुम पानी

जेहि मटिया के घर महुँ बैठे, तामे सृष्टि समानी
छपन कोटि जादव जहँ भीजे, मुनिजन सहस अठासी
पैग-पैग पैगंबर गाड़े, सो सब सरि भो माटी
तेहि मटिया के भाँड़े पांडे, बूझि पियहु तुम पानी
मच्छ कच्छ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया
नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु मानुष सब सरिया

कबीर को इस विषय में कोई संदेह नहीं है कि छुआछूत के समर्थन में पंडित लोग धर्मग्रंथों के जो प्रमाण देते हैं, वे निरर्थक हैं। वे प्रमाण धर्मग्रंथों के नहीं, बल्कि उनके मन के भ्रम हैं। छुआछूत का संबंध धर्मग्रंथों से नहीं है। वे वास्तव में वहां हैं नहीं। छुआछूत तो पंडितों का कर्म है—यह उनकी रचना है।

सच तो यह है कि छूत जैसी कोई चीज़ नहीं होती। कबीर पंडित से यह कहते हैं कि तुम ज़रा मन में सोच-विचार कर देखो। यह तो बताओ कि यह छूत क्या है और यह कहां से उत्पन्न हुई है, जो तुम इसमें विश्वास कर रहे हो? प्राणवायु, रज (रुधिर) और वीर्य (बिंदु) के संयोग से स्त्री के शरीर में हर जाति के मनुष्य का शरीर बनता-बढ़ता है। स्त्री के शरीर के आठवें कमल (मूलाधार) के समीप की योनि से इस पृथ्वी पर सभी लोग जन्म लेते हैं। ऐसा नहीं है कि ब्राह्मण किसी दूसरे

बेद कितेब छाँड़ि देहु पांडे, ई सब मन के भर्मा।

कहैं कबीर सुनो हो पांडे, ई सब तुम्हरे कर्मा।

रूप में जन्म लेता है और अछूत किसी दूसरे रूप में। तो, यह तो बताओ कि मनुष्य और मनुष्य के बीच यह छूत कहां से आ गयी? चौरासी लाख योनियों में अलग-अलग शरीर हैं। वे सब शरीर मृत्यु के बाद सड़कर मिट्टी में मिल जाते हैं। ईश्वर ने धरती नाम के एक ही पाट पर सभी प्राणियों को बिठाया है—एक ही पाट पर रख कर सब को समान बना दिया है। इसलिए तुम किसे छूत कहोगे? विचार करने पर यह प्रतीत होगा कि भोजन और पानी, दोनों में छूत (अशुद्धता) भरी हुई है। छूत (रज-वीर्य की अशुद्धता) से सारा जगत उत्पन्न हुआ है। इसलिए जाति, जल और भोजन में छूत का विचार गलत है। असली छूत (अशुद्धता) का वास तो हमारे मन के भीतर है। कबीर कहते हैं—छूत से विवर्जित (परे) तो वह है, जो माया के वश में नहीं है—

पंडित देखहु मन में जानी

*कहुधौं छूति कहाँ से उपजी, तबहिं छूति तुम मानी
नादे बिंदु रुधिर के संगे, घट ही में घट सपचै
अस्त कमल होइ पुहुमी आया, छूति कहाँ से उपजै
लख चौरासी नाना वासन, सो सब सरि भो माटी
एकहि पाट सकल बैठाये, छूत लेत धौं काकी
छूतिहि जेवन छूतिहि अँचवन, छूतिहि जग उपजाया
कहैं कबीर ते छूति विवरजित, जाके संग न माया*

इस प्रकार, कबीर जाति व्यवस्था के भीतर पनपने वाले ऊंच-नीच के भेद और छुआछूत का खंडन करते हैं। वे इस मूल बात पर जोर देते हैं कि इस तरह के सामाजिक भेदभाव गलत हैं, क्योंकि ये भगवान के बनाये हुए न होकर ब्राह्मणों के दिमाग की उपज है।

धर्म और संप्रदाय

कबीर के समय का समाज आज की तरह जिस प्रकार जात-पांत में बंटा था, उसी प्रकार अलग-अलग संप्रदायों और धर्मों में बंटा था। सिद्धांत के रूप में यह बात कही जाती है कि सभी धर्म और सभी संप्रदाय हमें अलग-अलग रास्तों से एक ही ईश्वर तक ले जाते हैं। इसलिए इनके भेद को महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। लेकिन व्यवहार में कुछ और ही दिखाई देता है। जिस

समाज में अलग-अलग धर्मों और संप्रदायों को माननेवाले लोग रहते हैं, उस समाज में अक्सर मतभेद और झगड़े होते हैं। यह बात कबीर के युग के विषय में भी सच थी और हमारे आज के युग के विषय में भी सच है।

उस समय जैसे हिंदुओं के यहां शैव, वैष्णव, शाक्त, जोगी, मौनी, दिगंबर आदि संप्रदाय थे, वैसे मुसलमानों के यहां शिया, सुन्नी आदि संप्रदाय। इनके विषय में कबीर की दृष्टि बहुत साफ थी। उनके अनुसार इस प्रकार के विभिन्न संप्रदायों में पाये जानेवाले भेद निरर्थक हैं। इनका संबंध धर्म की मूल आत्मा के साथ नहीं है। इनका संबंध पूजा-पाठ के तरीकों, साधना के ढंग, संप्रदाय की सूचना देने वाली वेशभूषा आदि बातों से है। कबीर ने दोनों धर्मों के संप्रदायों को पाखंड कहा है और इनकी संख्या छियानबे बतायी है :

*आलम दुनी सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयाना
छह दरसन पाषंड छ्यानबे, आकुल किनहूँ न जाना
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिष जग बौराना*

अर्थात्, मैंने पूरी दुनिया में खोज कर यह देख लिया है कि भगवान के सिवा सब कुछ अज्ञान या झूठा है। लेकिन दुनिया के लोग छह दर्शन और योगी, जंगम, दरवेश आदि संप्रदायों की विभिन्न शाखाओं को मिलाकर छियानबे पाखंड के पीछे व्याकुल हैं। इनमें से किसी को सत्य की कोई जानकारी नहीं है। जप, तप, संयम, पूजा-अर्चना और ज्योतिष के पीछे सारी दुनिया पागल है।

ये संप्रदाय एक ही धर्म को मानने वाले हर समाज को अलग-अलग कुनबों में बांट रहे हैं। ये भगवान से जोड़ने के नाम पर लोगों को एक-दूसरे से तोड़ रहे हैं। ये सच्चा ज्ञान नहीं कराते। सच्चा ज्ञान आत्म-ज्ञान है, जो आदमी को आदमी से जोड़ता और उनके बीच के भेदभाव मिटाता है। ये संप्रदाय आत्मज्ञान कराने में असमर्थ हैं, इसलिए कबीर लोगों को इनसे बचने को कहते हैं।

कबीर के युग में विभिन्न संप्रदायों के आपसी मतभेदों से भी अधिक बड़ी समस्या हिंदुओं और

मुसलमानों के आपसी मतभेदों की थी। उस समय इन दोनों के संबंध बहुत अर्थों में आज जैसे थे। लेकिन दोनों के संबंधों में एक बहुत बड़ा फ़र्क भी था। उस युग में मुसलमान शासक थे। आज वे शासक नहीं हैं। लेकिन इस फ़र्क के बावजूद दोनों के संबंध पहले की तरह आज भी मतभेद और तनाव के हैं। कबीर दोनों के विषय में जो बात कहते हैं, वह उनके युग की तरह आज भी सच है :

*हिंदू कहै मोहि राम पियारा, तुर्क कहै रहिमाना
आपस में दोउ लरि-लरि मूए, मर्म न काहू जाना*

राम और रहीम का यह झगड़ा दोनों संप्रदायों को एक-दूसरे से अलग करता रहा है। दोनों यह समझने को तैयार नहीं हैं कि राम और रहीम (या रहमान) एक ही ईश्वर के अलग-अलग नाम हैं। कबीर धार्मिक भेदभाव और कट्टरता के लिए दोनों को फटकारते हैं। वह अपने समय के मुसलमानों को हिंदुओं पर अत्याचार करने के लिए कड़ी डांट-फटकार सुनाते हैं। वह उनसे यह कहते हैं कि अन्याय, अत्याचार और हिंसा धर्म या मजहब के मेल में नहीं हैं, मजहब तो प्रेम और दया सिखाता है। इसलिए वह विधर्मी (क्वाफिर) के साथ जोर-जबर्दस्ती (बल प्रयोग) करने की बात करने वाले मुल्ला-मौलवियों (मीयां) से यह कहते हैं :

मीयाँ तुम्ह सौँ बोल्यो बनि नहिँ आवै

*हम मसकीन खुदाई बंदे तुम्हरा जस मनि भावै
अल्लह अवलि दीन को साहिब जोर नहीं फुरमाया
मुरसिद पीर तुम्हारे है को कहौ कहाँ ते आया
रोजा करै निवाज गुजारै कलमै भिस्ति न होई
सत्तर काबे घट ही भीतरि जे करि जानै कोई
खसम पिछानि तरसि करि जिय मैं माल मनी करि फीकी
आपा जानि साई कौँ जानै तब होइ भिस्ति सरीकी
माटी एक भेख धरि नाना तामैं ब्रह्म समाना
कहै कबीर भिस्ति छोड़ि करि दोजग ही मन माना।*

अर्थात्, सुनो मियां! तुमसे कुछ कहते नहीं बनता। हम तो दीन हैं, खुदा के बंदे (सेवक) हैं। तुम जो चाहो, हमें वही समझो। अव्वल तो अल्लाह दीन-हीन लोगों का स्वामी है। उसने किसी से जोर-जबर्दस्ती

करने का हुक्म नहीं दिया है। तुम्हारे वे धर्मगुरु (मुर्शीद) और पीर कौन हैं, जो तुमसे यह कहते हैं कि विधर्मियों पर बल प्रयोग और अत्याचार करना चाहिए? रोजा रखने, पांचों वक्त नमाज़ अदा करने और कलमा पढ़ने से स्वर्ग (बहिश्त) नहीं मिलता। जो जानना चाहता है, उसे यह ज्ञान हो जाता है कि प्रत्येक घट (मनुष्य) में कई काबा मौजूद हैं। प्रभु हर मनुष्य में निवास करता है। इसलिए उस पर अत्याचार करने का अधिकार किसी को नहीं दिया गया है। तुम अपने स्वामी (खसम) को पहचानो, दिल में तरस या दया लाओ और अपने मन में धन-दौलत (माल) को फीका समझो। अपने आपको—अपने स्वरूप को—और अपने स्वामी प्रभु को जानो। तभी तुम स्वर्ग (भिस्ति या बहिश्त) में शरीक हो सकते हो—उसमें प्रवेश पा सकते हो। सब एक ही मिट्टी के बने हैं। उसी मिट्टी के कई रूप हो गये हैं। इन सभी रूपों में ब्रह्म समाया हुआ है। कबीर कहते हैं, तुमने स्वर्ग (बहिश्त) का मार्ग छोड़ दिया है और तुम्हारा मन नरक (दोजक या दोजख) में ही रम गया है।

ईश्वर मुसलमान और हिंदू में कोई भेद नहीं करता। दोनों उसकी ही रचना हैं। इसलिए कबीर दोनों से अपना हठ छोड़ने को कहते हैं। ईश्वर को अलग-अलग नाम से पुकारने के कारण दोनों यह मान बैठे हैं कि राम और रहीम अलग हैं। वे अलग-अलग ढंग से एक ही ईश्वर की उपासना करते हैं और उपासना के ढंग को असली धर्म या मजहब मान लेते हैं। धर्म के नाम पर हठ या झगड़े की जड़ यही है। कबीर यह बताते हैं कि हिंदू और मुसलमान, दोनों ऊपरी बातों में उलझे हुए हैं। वह उनके आपसी भेद और झगड़े को दूर करने के लिए उन्हें समझाते हुए यह कहते हैं—

*हमारे राँम रहीम करीमा केसो, अलह राँम सति सोई
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई
इनके काजी मुला पीर पैकंबर, रोजा पछिम निवाजा
इनके पूरब दिसा दिव द्विज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा
तुरुक मसीति देहरै हिंदू, दुहंठा राँम खुदाई
जहाँ मसीत देहरा नाँहीं, तहाँ काकी ठकुराई
हिंदू तुरुक दोऊ रह टूटी, फूटी अरु कनराई*

अरध उरध दसहूँ दिसि जित तित, पूरी रहा राम राई
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई
हिंदू तुरुक का करता एकै, ता गति लखी न जाई

अर्थात् हमारे लिए तो राम और रहीम, करीम और केशव, अल्लाह और राम एक ही सत्य के अलग-अलग नाम हैं। बिसमिल्लाह के बदले विश्वम्भर कह दो, तो इससे क्या फ़र्क पड़ता है? दोनों एक हैं, दोनों कोई और नहीं हैं। मुसलमानों के काज़ी, मुल्ला, पीर और पैगंबर हैं। उनके धर्म में रोज़ा है और पश्चिम की ओर मुंह कर नमाज़ पढ़ने की बात है। हिंदुओं में पूर्व दिशा की ओर मुंह कर पूजा करने का चलन है। वे देवताओं और ब्राह्मणों (द्विज) की पूजा करते हैं। वे एकादशी करते, गंगा में नहाते और दिये जलाते हैं। मुसलमान (तुर्क) मस्जिद को और हिंदू मंदिर को ईश्वर का निवास-स्थान मानते हैं। लेकिन दोनों जगह तो एक ही राम या खुदा रहता है। वह तो सब जगह है—सर्वव्यापी है। नहीं तो यह बताओ कि जहां मंदिर या मस्जिद नहीं है, वहां किसकी प्रभुता (ठकुराई) है? हिंदू और मुसलमान, दोनों के रास्ते टूटे, फूटे और सच्चे मार्ग से हटे हैं। ऊपर और नीचे, दशों दिशाओं में, सब जगह राजा राम व्याप्त हैं। फ़कीर कबीर कहते हैं—
भाई! अपनी-अपनी राह से चलो। हिंदू और मुसलमान (तुर्क), दोनों का कर्ता (बनाने वाला) एक ही है। उसकी गति (मर्म) समझ पाना असंभव है।

इस तरह, कबीर यह बताते हैं कि धार्मिक मतभेद और टकराव धर्म के मूल स्वरूप की ग़ैर-जानकारी के कारण पैदा होते हैं। मूल धर्म एक है, जो पूजा-उपासना के अलग-अलग ढंग के कारण अलग-अलग धर्म के रूप में दिखाई देता है। यह बात समझ लेने पर हिंदुओं और मुसलमानों के वे झगड़े और हठ, जो हमारे समाज को तोड़ते हैं, अपने आप समाप्त हो जायेंगे।

पद और धन

कबीर की समाजदृष्टि का महत्त्वपूर्ण अंग उनकी पद और धन संबंधी दृष्टि है। कबीर यह नहीं मानते कि कोई राजा, सुलतान या राज्य का अधिकारी होने से बड़ा हो जाता है। वह यह भी नहीं मानते कि कोई धनी होने से

ऊंचा और ग़रीब होने से नीचा हो जाता है। जाति और धर्म के भेद की तरह वह राजा और प्रजा या धनी और निर्धन जैसे भेद को भी अस्वीकार करते हैं। उनका विचार है कि हर व्यक्ति बराबर है। सब का मूल्य-महत्त्व एक-जैसा है।

लेकिन कबीर यह देखते हैं कि उनके समय के समाज में जाति और धर्म की तरह पद और धन भी ग़ैर-बराबरी के कारण हैं। जो आदमी पद की हैसियत से जितना ही बड़ा है, वह दूसरों को उतना ही छोटा समझता है। जो धनी है, वह निर्धन को तुच्छ समझता है। कबीर कहते हैं—निर्धन आदर कोई न देई। राजा और प्रजा या धनी और ग़रीब का यह भेद उन्हें अनुचित और दुःखद लगता है, लेकिन वह जानते हैं कि सामाजिक जीवन का यथार्थ यही है।...

धन या अधिकार मिलने पर किसी को इस पर गर्व भी नहीं करना चाहिए। कोई नहीं जानता कि कब तक उसका धन, पद या राज्य बना रहेगा और कब उसके हाथ से छिन जायेगा। इसीलिए अपने को धनी या बड़ा और दूसरे को निर्धन या छोटा मानना ठीक नहीं है। पता नहीं, किस वृक्ष के नीचे शरीर ही हड्डियां कूड़े का ढेर बन कर रह जायें—

आपनपौ न सराहिये, और न कहिये रंक

ना जानौं किस बिरिख तलि, कूड़ा होइ करंक

धन या पद के गर्व के खंडन के लिए कबीर एक और तर्क देते हैं। वह यह कहते हैं कि संसार का कोई भी व्यक्ति मृत्यु से नहीं बच सकता। सब कुछ क्षणिक है। कुछ भी स्थायी नहीं है। सब कुछ बदलता रहता है। सब कुछ बीतता जाता है। जिस मंदिर (घर) में कभी संगीत के सातों स्वर बजते थे और छत्तीसों राग सुनाई देते थे, वह आज खाली हो गया है—उसमें आज कोई नहीं रहता। अब उस पर कौए बैठने लगे हैं। बादशाह जिस बादशाही के मद में चूर रहता है, वह बादशाही वन के हरे पत्ते की तरह चार दिन की होती है। महल और

सातो सबद जु बाजते, होत छतीसो राग।

सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।

दिवस चारि की है पातिसाही, ज्यूँ बन हरियल पात।

बावड़ी बनाने वाले राजा सब कुछ यहीं छोड़कर चले जाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि जीवन के इस कठोर सत्य-मृत्यु को जानने पर भी राजा और सुलतान भोग-विलास और अहंकार में लिप्त रहते हैं। उन्हें सावधान करते हुए, चेतावनी देते हुए, कबीर यह कहते हैं कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब धन-वैभव और अधिकार, सबसे बिछोह हो जायेगा। कुछ भी अपने हाथ में नहीं रहेगा—मृत्यु के बाद सब कुछ यहीं धरा रह जायेगा। इसलिए इसी समय से राजा, राणा और छत्रपति क्यों नहीं सावधान हो जाते, क्यों नहीं पवित्र और धार्मिक जीवन जीना शुरू कर देते?

*इक दिन ऐसा होइगा, सब सूँ पड़े विछोह
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ*

कबीर यह चाहते हैं कि अधिकारी और धनपति अधिकार और धन का गर्व और मोह न करें। वे जीवन की क्षणभंगुरता को याद रखें और अपना आचरण और जीवन सुधारें। वे अधिकारहीन और निर्धन लोगों के साथ अन्याय और अत्याचार न करें।

कबीर के साहित्य का कोई भी पाठक यह अनुभव कर सकता है कि धन-वैभव, भोग-विलास और अधिकार-अहंकार के बारे में उनकी कोई अच्छी धारणा नहीं है। नहीं तो वह इनकी निंदा नहीं करते। ये आदमी को भगवान से दूर ले जाते हैं। इनके कारण आदमी और आदमी के बीच भी दूरी और भेदभाव पैदा हो जाते हैं। इसलिए जीवन जीने के लिए जितना वित्त या धन जरूरी है, मनुष्य को उतने ही धन की कामना करनी चाहिए। स्वयं कबीर उतना ही मांगते हैं, जितना घर-परिवार चलाने के लिए जरूरी है—

*साईं इतना दीजिये जा मैं कुटुम समाय
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय*

धन या पद किसी के अपने हाथ में नहीं है, बल्कि भाग्य के हाथ में है—इस आधार पर कबीर समाज के निर्धन लोगों को हीनता के भाव से मुक्त कर उनमें आत्मविश्वास भरना चाहते हैं। जैसे वह शूद्र के मन में

नैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाँडि गये सब भूपति राजा।

यह भाव भरते हैं कि वह ब्राह्मण से छोटा नहीं है, वैसे ही वह निर्धन के मन में यह भाव भरते हैं कि वह अपने को किसी राव-राजा, सुलतान या धनपति से छोटा नहीं समझे। लेकिन वह उससे यह अपेक्षा करते हैं कि वह न किसी की धन-संपत्ति से ईर्ष्या करे और न किसी के सामने हाथ पसारे, क्योंकि 'मांगना मरन समान है'। वह परिश्रम और ईमानदारी का जीवन जिये—

*भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग
भाँड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पुरवन जोग*

अर्थात्, तू 'भूखा-भूखा' क्यों कहता है? क्यों लोगों को अपनी भूख की बात सुनाता है? जिसने तेरे शरीर-रूप घड़े को गढ़ कर मुख दिया है, वही तेरे भोजन का प्रबंध भी करेगा।

शायद यह दुहराना जरूरी नहीं कि कबीर का विश्वास मनुष्य और मनुष्य की बराबरी के समाज में है। उनका मूल तर्क यह है कि सभी मनुष्य बराबर हैं, न कोई छोटा है और न बड़ा। इस प्रसंग में एक और उल्लेख जरूरी है। कबीर सामाजिक बराबरी के समाज में ही विश्वास नहीं करते, बल्कि उस बराबरी को सामाजिक व्यवहार में भी देखना चाहते हैं। यही वह विशेषता है, जो उनकी समाज दृष्टि को समग्रता प्रदान करती है और हमारे अपने समय और समाज से जोड़ती है।

*(साभार : श्री राजकिशोर जी द्वारा संपादित
'कबीर की खोज')*

पलटू गुनना छोड़ि दे, चहै जो आतम सुख।
संसय सोइ संसार है, जरा मरन को दुख
मरते मरते सब मरै, मरै न जाना कोय।
पलटू जो जियते मरै, सहज परायन होय
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम
बड़े बड़ाई न भूले, छोटे हैं सिरदार।
पलटू मीठा कूप जल, समुँद पड़ा है खार
(पलटू साहेब की बानी)

व्यवहार वीथी

प्रिय पात्र कैसे बनें?

हर आदमी के मन में यह भावना होती है कि लोग मेरे बारे में अच्छी धारणा, अच्छी राय, अच्छे विचार रखें और मुझे अच्छा मानें। यह भावना गलत नहीं है, परंतु सोचना यह है कि इसके लिए स्वयं क्या कर रहे हैं। होना तो यह चाहिए कि स्वयं दूसरों के बारे में अच्छी धारणा, अच्छी राय रखें, अच्छा सोचें, साथ ही अच्छा रहें, अच्छा करें, अच्छा बोलें और अच्छा बनें। यदि स्वयं अच्छा हैं तथा अच्छा सोचते, अच्छा बोलते, करते तथा रहते हैं तो फिर चिंता करने की आवश्यकता ही नहीं है कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं। लोग जो सोचते हैं, सोचने दें। परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहते हैं—

*अच्छा कहलाने की इच्छा, रखना कभी न मन में।
किन्तु सदा अच्छा रहना, मन में वाणी में तन में*

ध्यान रहे, शारीरिक रूप-सौंदर्य, धन, बल, विद्या, प्रभुता, शासन, अधिकार आदि से संपन्न होना अच्छा होना नहीं है, किन्तु शुभ संस्कार, स्वभाव, गुण-कर्म, आचरण, चरित्र, व्यवहार से अच्छा होना, सरल, विनम्र, कोमल, निष्कल, निष्कपट होना अच्छा होना है। सरलता, विनम्रता, कोमलता, निष्कलता, निष्कामता, सहनशीलता, त्यागभाव, उज्ज्वल चरित्र, कोमल व्यवहार का महत्त्व सब समझते हैं। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अहंकारी आदमी दूसरे अहंकारी को अच्छा नहीं मानता, उसकी प्रशंसा नहीं करता किन्तु सरल, विनम्र आदमी को अच्छा मानता है और उसकी प्रशंसा करता है। इसी प्रकार क्रोधी दूसरे क्रोधी को, लोभी दूसरे लोभी को, कंजूस दूसरे कंजूस को, झगड़ालू दूसरे झगड़ालू को अच्छा नहीं मानते, किन्तु शांत, गमखोर, उदार, दानी, सेवापरायण, सहनशील को अच्छा मानते हैं।

धन, बल, विद्या, प्रभुता, शासन, अधिकार आदि से प्राप्त बड़प्पन नकली एवं दिखावे का है, और जल्दी ही मिट जाने वाला है। असली एवं स्थायी बड़प्पन आंतरिक है जो सदगुण, सदाचार, त्यागभाव से प्रकट होता है। आंतरिक बड़प्पन कैसे प्रकट हो और लोगों के मन में हमारे प्रति अच्छी छवि कैसे बने, इसके लिए आवश्यक गुणों में से कुछ गुणों पर यहां विचार करें—

. **नमन**—नमन का अर्थ है झुकना, नमस्कार करना। नमस्कार-प्रणाम करने में झुकना स्वाभाविक होता है। जिन चीजों में व्यक्ति को सदैव आगे रहना चाहिए उनमें एक नमस्कार करना भी है। पहले नमस्कार करने में अपना अहंकार आड़े आ सकता है कि यदि मैं पहले नमस्कार करूंगा तो लोग मुझे छोटा समझेंगे, परंतु ऐसा नहीं है। पहले नमस्कार करने वाला, झुक जाने वाला ही बड़ा होता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

कबीर नवै सो आपको, पर को नवै न कोय।

घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय

अर्थात् दूसरों के लिए कोई नहीं झुकता, किन्तु झुकने वाला झुककर अपना बड़प्पन प्रकट करता है। प्रत्यक्ष है तराजू का जो पलड़ा झुका होता है, वह ज्यादा वजनदार और मूल्यवान होता है।

पेड़ की जिस डाल में जितने अधिक फल होते हैं वह उतना अधिक झुका होता है और जिसमें जितने कम फल होते हैं वह उतना उठा होता है। इसी प्रकार जो भीतर से जितना भरा होता है, जिसमें जितनी महानता होती है वह उतना सरल और विनम्र होता है और झुककर लोगों का प्रिय पात्र बन जाता है, सबके दिल में जगह बना लेता है। इसके विपरीत जो भीतर से जितना खाली होता है वह उतना अकड़बाज होता है और अकड़बाज आदमी अपने कहे जाने वालों में ही अप्रिय हो जाता है, किसी के दिल में उसके लिए जगह नहीं होती।

धम्मपद में कहा गया है कि माता-पिता, बड़े बुजुर्गों तथा गुरुजनों का नमस्कार करने वालों की चार चीजें बढ़ती हैं—

अभिवादनशीलस्य निच्चं वुड्ढापचायिनो।

चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं

अर्थात् जो विनम्र है, नित्य वृद्धों का आदर करता है, उसके चार धर्म बढ़ते हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।

यही बात मनुस्मृति में भी कही गयी है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि संप्रबद्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् /

अर्थात् जो अभिवादनशील और नित्य वृद्धों की सेवा करने वाला है उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चार चीजें बढ़ती हैं।

नमस्कार के संबंध में अमेरिका के लोकप्रिय राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का उदाहरण अत्यंत प्रेरणाप्रद और अनुकरणीय है—

एक बार लिंकन अपने एक सहयोगी के साथ पैदल कहीं जा रहे थे। सामने से लकड़ी का गट्टर लिये एक लकड़हारा आ रहा था। निकट आने पर लकड़हारे ने लकड़ी का गट्टर उतारकर तथा झुककर लिंकन को नमस्कार किया। लकड़हारे को नमस्कार करते देखकर लिंकन ने अपना हेट उतारकर लकड़हारा को नमस्कार किया और आगे बढ़ गये। आगे जाने पर लिंकन के सहयोगी ने उनसे कहा—हुजूर! आप अमेरिका के राष्ट्रपति हैं और एक राष्ट्रपति का इस प्रकार झुककर एक लकड़हारा को नमस्कार करना शोभा नहीं देता। तब लिंकन ने बड़ा सुंदर उत्तर दिया—मैं नहीं चाहता कि अमेरिका का राष्ट्रपति नमस्कार करने में एक लकड़हारा से पीछे रह जाये।

यही महानता और बड़प्पन का लक्षण है। ऐसा करने वालों के लिए दूसरों के दिल में अपने आप जगह बन जाती है और लोग उसके सामने झुक जाते हैं। हमने देखा है कि पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी बड़ों के प्रति सदैव विनयावनत रहते ही थे, कहीं छोटी-बड़ी सभा में जाने पर तथा अपरिचितों से मिलने पर स्वयं पहले ही हाथ जोड़ लेते थे। इससे वे कहीं छोटा नहीं समझे गये, किन्तु उनका बड़प्पन बढ़ता ही गया।

. निष्काम सेवापरायणता—प्रायः लोग समझते हैं कि सेवा करने वाला छोटा आदमी होता है, परंतु यह समझ गलत है। किसी भी दिशा में उन्नति का मूल आधार सेवा ही है। यदि किसी ने कहीं से कुछ सीखा या पाया है तो सेवा से ही सीखा और पाया है। सेवा चित्त की प्रसन्नता का कारण तो है ही चित्त की निर्मलता का भी कारण है, क्योंकि बिना चित्त के निर्मल हुए कोई सच्ची प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति सदैव चित्त की प्रसन्नता का अनुभव करते रहना चाहता है, साथ-साथ लोगों के बीच प्रिय पात्र तथा प्रशंसनीय बने रहना चाहता है उसके लिए सेवापरायण बने रहना अत्यंत आवश्यक है। हां, यदि सेवा निष्काम भाव से हो तो क्या पूछना! निष्कामभाव से सेवापरायण व्यक्ति लोगों के बीच प्रिय पात्र और प्रशंसनीय ही नहीं पूज्य बन जाता है। हनुमान जी इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

रामायण के अनुसार राम सेव्य हैं और हनुमान सेवक। परंतु भारत में राम के मंदिर की अपेक्षा हनुमान के मंदिर ज्यादा मिलते हैं और राम मंदिर की अपेक्षा हनुमान मंदिर में ज्यादा भीड़ होती है। अपनी निष्काम सेवा के बल पर हनुमान अपने सेव्य और स्वामी राम से ज्यादा पूजनीय हो गये। हनुमान की प्रशंसा और महिमा में लोग यहां तक कहने लगे कि 'दुनिया चले न श्रीराम के बिना और श्रीराम चले न हनुमान के बिना।' हनुमान की निष्काम सेवा के संबंध में एक कहानी कही जाती है—

लंका-विजय के पश्चात् जब राम अयोध्या वापस आये और वहां उनका राज्याभिषेक हुआ तब उन्होंने लंका-युद्ध में जिन्होंने उनकी विशेष सहायता की थी, उन लोगों को पुरस्कार एवं सम्मान स्वरूप अयोध्या में कोई पद देना चाहा। सबको योग्यतानुसार पद देने के पश्चात् उन्होंने हनुमान से कहा—हनुमान! लंका-युद्ध में तुमने मेरी जितनी सहायता की है, उतनी किसी ने नहीं की है। तुम्हारे बल पर ही मैंने लंका में विजय पायी है। तुमसे तो मैं कभी उन्नत हो ही नहीं सकता।

मैं तुम्हें कौन-सा पद दूँ? तुम जो मांगोगे वही पद मैं तुम्हें देने के लिए तैयार हूँ। हनुमान ने कहा—स्वामी! मैंने पद पाने के लिए सेवा नहीं की है। मैंने तो केवल अपने कर्तव्य का पालन किया है। अतः मुझे कोई पद नहीं चाहिए। राम ने कहा—हनुमान! मैं तुम्हारी भावना को समझता हूँ, परंतु तुम मेरे संतोष के लिए कोई न कोई पद अवश्य ले लो। जब राम ने बहुत जोर डाला तब हनुमान ने कहा—यदि आपको मुझे कोई पद देने से ही संतोष होता है तो मैं पद अवश्य लूँगा, किन्तु एक नहीं दो पद लूँगा। राम ने कहा—मैं तुम्हें जितने पद चाहिए उतने पद देने को तैयार हूँ। बोलो, तुम्हें कौन-से दो पद चाहिए? राम की बात सुनकर हनुमान उठे और झुककर राम के दोनों पैरों को दोनों हाथ से पकड़कर कहा—प्रभु! मुझे सिर्फ यही दो पद चाहिए, इसके अलावा और कोई पद नहीं चाहिए।

यह बात अलग है कि आगे चलकर भक्तों द्वारा हनुमान के नाम पर बहुत-सी अतिशयोक्तियाँ, महिमाएं एवं चमत्कार जोड़ दिये गये हैं, किन्तु हनुमान अपनी विनम्रता एवं निष्काम सेवापरायणता के कारण ही प्रसिद्ध एवं पूज्य हुए। विनम्र, सरल एवं निष्काम सेवा परायण व्यक्ति सबके दिल को मोह लेता है, सबके दिल में अपनी जगह बना लेता है।

. क्षमा—क्षमा का अर्थ है अपराधी से बदला लेने की भावना न रखना, किन्तु उसके हित की बात सोचना। गलती किससे नहीं होती? गलती होने पर हर आदमी अपने लिए दूसरों से क्षमा का व्यवहार ही चाहता है।

कुछ लोग क्षमा करने को सामने वाले की कमजोरी तथा अपराध को बढ़ावा देना मानते हैं, किन्तु क्षमा करना न तो कमजोरी है और न अपराध को बढ़ावा देना। कमजोर आदमी क्षमा करना नहीं जानता किन्तु वह जल्दी ही उत्तेजित होकर बदला लेने, झगड़ने को तैयार हो जाता है। क्षमा तो वीर पुरुष ही कर सकता है। इसीलिए कहा गया है—क्षमा वीरस्य भूषणम्। क्षमा करना वीर पुरुष की शोभा है। सामाजिक क्षेत्र में दंड

देने की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु यह भी ध्यान देने की बात है कि दंड देने की अपेक्षा क्षमा करने से सुधार ज्यादा होता है। दंड देना कमजोरी का और क्षमा करना वीरता का, बड़प्पन का लक्षण है। क्षमा करने वाला सदैव बड़ा होता है और माना जाता है। यह कहानी बहुत प्रसिद्ध है कि भृगु मुनि ने जब विष्णु की छाती पर लात मारी तब विष्णु ने उनके पैर पकड़ लिये और कहा—मुनिवर! मेरी कठोर छाती में लात मारने से आपके कोमल पैर में चोट तो नहीं लगी। भृगु मुनि को विष्णु ने क्षमा कर दिया तो विष्णु पूज्य बन गये। इसीलिए कहा गया है—

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।

कहा विष्णु को घट गयो, जो भृगु मारी लात

संत ईसा की क्षमा तो प्रसिद्ध ही है। जिन लोगों ने उन्हें क्रॉस पर लटकाया उनके प्रति उनके मन में रंच मात्र द्वेष, क्रोध और वैरभाव नहीं आया, किन्तु उनके प्रति भी उनके मन में हितकामना रही और उनके मुख से यह उद्गार निकला—हे प्रभु! इन्हें क्षमा करना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। अपने अपराधियों को क्षमा करके ईसा पूरी दुनिया में छा गये और जिन लोगों ने उन्हें क्रॉस पर लटकाया, उन्हें कोई नहीं जानता, वे कब के मर गये।

क्षमा करना अपराधी के मन में पश्चाताप प्रकट करके उसे कैसे बदल देता है, निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है—

दक्षिण भारत में तिरुवल्लुवर एक प्रसिद्ध संत हुए हैं। वे बड़े शांत प्रकृति के थे। वे कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे, क्रोध करना वे जानते ही नहीं थे। इस बात के लिए उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। उनकी इस प्रसिद्धि को सुनकर एक धनी और उद्दण्ड युवक ने कहा कि मैं उन्हें क्रोध दिला कर रहूँगा। एक दिन जब संत तिरुवल्लुवर बाजार में कपड़ा बेच रहे थे तब वह उद्दण्ड युवक उनके पास गया और एक चादर उठाकर पूछा— इसकी क्या कीमत है? तिरुवल्लुवर ने कहा—दो रुपये। उनकी बात सुनकर उसने चादर को बीच से फाड़कर दो

टुकड़े कर दिये और कहा—अब इनकी क्या कीमत है? तिरुवल्लुवर ने शांत भाव से कहा—एक रुपये। उसने उसके भी दो टुकड़े कर पूछा—इसकी कीमत? आठ आने। उसने उसके दो टुकड़े कर पूछा—इसकी कीमत। तिरुवल्लुवर ने कहा—चार आने। अबकी बार उसने उसके कई टुकड़े कर पूछा—इनकी कीमत। तिरुवल्लुवर ने कहा—अब इनकी कोई कीमत नहीं है, क्योंकि ये टुकड़े किसी काम लायक नहीं रह गये हैं। उनकी बात सुनकर उस युवक ने उन्हें दो रुपये देते हुए कहा कि मैंने तुम्हारी चादर फाड़ कर तुम्हारा नुकसान कर दिया। तुम उसकी कीमत रख लो। संत तिरुवल्लुवर ने उस युवक से बड़े प्रेम और शांत भाव से कहा—जब तुमने चादर खरीदी ही नहीं तब मैं तुमसे उसकी कीमत क्यों लूँ। बेटे! क्या तुम इस चादर की कीमत समझते हो। सोचो, किसान ने कितनी मेहनत से कपास पैदा किया, फिर कपास चुनकर उससे रूई और बिनौले अलग-अलग किये गये। फिर रूई धुनकर बड़ी मेहनत से धागा काता गया। तब जुलाहे ने परिश्रमपूर्वक उससे चादर बुना। जब यह चादर किसी के ओढ़ने, तन ढकने के काम आती, तब इसकी कीमत मिल पाती। तुमने तो चादर फाड़कर अनेक लोगों की मेहनत को बरबाद कर दिया। क्या तुम उन लोगों की मेहनत की कीमत चुका सकते हो? तिरुवल्लुवर की बात सुनकर वह उद्वण्ड युवक उनके चरणों में गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा। उसके पश्चात तो उसका जीवन ही बदल गया।

क्षमा एक ऐसा अमोघ अस्त्र है जो अपराधी एवं विरोधी के मन को बदलकर अनुगामी-अनुयायी-प्रशंसक बना देता है।

. **दीनता**—दीनता का अर्थ है धन-मद, बल-मद, विद्या-मद, जाति-मद, प्रभुता-मद, अधिकार-मद—सारे मदों का त्यागकर अपने को सबसे छोटा और पीछे मानना। विनम्र रहकर चुपचाप, दिखावा रहित होकर सबकी सेवा करना और सबको पोषण देना। अहंकार, आग्रह और अपेक्षारहित होकर तत्परतापूर्वक कर्तव्यपरायण होना। जैसे पानी सबसे नीचे और गंदी से

गंदी जगह में जाकर सबको पोषण देता है, किसी से किसी प्रकार प्रतिदान की अपेक्षा नहीं रखता। पानी अपने को हर रंग और हर आकार में ढाल लेता है, वैसे ही दीन भाव युक्त मनुष्य सब में घुल-मिल जाता है। वह सबको अपनाकर सबको अपना बना लेता है। जो सारी कठोरता का त्यागकर अपने को एकदम कोमल एवं मुलायम बना लेता है वह सबके दिल को जीत लेता है और सबके दिल में उसके लिए जगह बन जाती है। वह सबका प्रिय पात्र बन जाता है।

. **सबसों आदर भाव**—जो अपमान-सम्मान, निंदा-प्रशंसा से ऊपर उठ चुके हैं ऐसे बिरले महापुरुषों को छोड़कर दूसरों से आदर-सम्मान, प्रेम-प्रशंसा पाने की भूख किसके मन में नहीं होती! परंतु बहुत कम लोग ही यह महसूस कर पाते हैं कि मुझे लोगों द्वारा भरपूर आदर-सम्मान, प्रेम-प्रशंसा मिल रहे हैं। अधिकतम लोगों की यही शिकायत रहती है कि लोग मुझे जैसा चाहिए वैसा मान-सम्मान, प्रेम-प्रशंसा नहीं देते। इसका कारण यह है कि वे स्वयं दूसरों को जैसा चाहिए वैसा आदर-सम्मान, प्रेम-प्रशंसा नहीं दे पाते। दूसरों से आदर-सम्मान, प्रेम-प्रशंसा पाने का सबसे सुंदर और आसान तरीका है सबको स्वयं आदर-सम्मान, प्रेम-प्रशंसा देते रहना। सदैव देते रहने वाले को नहीं मिलने की शिकायत नहीं होती।

जो स्वयं सबको निष्फल मन से आदर-सम्मान देता है और किसी के भी अच्छे गुण, कर्म, स्वभाव की प्रशंसा करता रहता है, वह सबकी दृष्टि में ऊपर उठ जाता है, सबके दिल को जीत लेता तथा सबका प्रिय पात्र हो जाता है।

इस प्रकार जो विनम्र होकर झुकना जानता है, निष्काम भाव युक्त सेवापरायण रहता है, किसी की गलती एवं अपराध को क्षमा कर देता है, मदरहित दीन भाव युक्त होता है और दूसरों को आदर-सम्मान देने में आगे रहता है वह सबके दिल को जीतकर सबका प्रिय पात्र बन जाता है। उपर्युक्त गुणों का आचरण जीवन जीने की सुंदर कला है।

—धर्मन्द्र दास

सत्य कबीर सत्य है वक्ता

लेखक—श्री धर्मदास

ग्रीष्म काल, ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन सूरज आग उगल रहा था, धरती के पशु-पक्षी तपन और प्यास से व्याकुल थे; सभी जीवधारी आकाश को इस आशा में निहार रहे थे कि बादल बरसे और धरा-धाम पर शीतलता उतरे। उसी दिन काशी की धरती पर नीमा के आंचल में खुशियों की बारिश हुई। निःसंतान दंपती की बरसों की मन्त्रों कबूल हुई और मां कहलाने की मुराद पूरी हुई। मौलवी ने कहा—नीमा की गोद में कबीर (आला) नमूदार हुआ।

कबीर को कोटि-कोटि प्रणाम क्योंकि उन्होंने जीने और मरने को नये सिरे से परिभाषित किया,

‘मरते मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय।

ऐसा होय के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय ’

अंधविश्वास, अंधश्रद्धा, धर्म-अधर्म, रोजा-एकादशी, तीरथ-मूरत, वेद-कितेब आदि के फरेब, शब्दजाल और मुल्ला-पुरोहितों के भ्रमजाल को काटकर मानवधर्म के राजपथ की आधारशिला तैयार किया—

‘ये कलि गुरु बड़े परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा।
वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फंदे परु आप बिचारा ’

हिन्दू-मुसलमान दोनों को गले लगाया। दोनों को लड़ाने वालों से सवाल किया—*‘हिन्दू तुरुक कहां ते आया, किन्ह यह राह चलाया।’*

ब्राह्मण-शूद्र में फर्क मानने वालों को दोनों में तात्त्विक एकता के दिग्दर्शन कराया—

‘एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।

एक बून्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा’।।

सत्य पालन को सबसे बड़ा धर्म और झूठ को पाप बताया; जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में ईश्वरत्व का वास होता है—

‘साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप ’

संसार का भ्रमण किया था और अनुभव के बाद निष्कर्ष दिया—

‘झूठे की मण्डान है, धरती असमाना’—धरती से आसमान तक सारे संसार में झूठे का ही बोलबाला है; *‘कासों कहौं, सकलो जग अंधा’*—मैं किससे कहूँ, सारा संसार दृष्टि-दोष से पीड़ित है।

‘साँचा से भागा फिरै, झूठे का बन्दा’—मनुष्य झूठे का गुलाम है और सच को स्वीकार करने से कतराता फिरता है।

जान लिया था कि सत्य कहने वाले को हिन्दुस्तान ही नहीं, सारे संसार के लोग सताने लगते हैं, झूठ बोलने वाले पर विश्वास करते हैं :

‘साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना’।

‘सत्य’ पर कबीर का कथन सर्वाधिक एवं विश्व व्यापक वास्तविकता है। कुछेक उदाहरण इसके प्रमाण हैं। ई.पू. - में यूनान देश के ‘एथेंस’ शहर में महान दार्शनिक सुकरात का जन्म हुआ था। तत्कालीन सत्ताधारियों एवं धर्माधिकारियों को उनसे चिढ़ हो गयी क्योंकि तत्कालीन मान्य देवी-देवताओं के प्रति आस्था एवं ईश्वर विषयक धारणाओं के संबंध में उनके विचार मेल नहीं खाते थे। सुकरात सत्य की खोज में लगे रहते थे। अंधविश्वासी सत्ताधारी और विलासी धर्माधिकारी उनकी आलोचना के पात्र थे। सुकरात को डराया-धमकाया गया कि अपनी हरकतों से बाज आये। सुकरात सत्य का प्रचार करते रहे तो उन्हें मौत की धमकी दी गयी। सुकरात डटे रहे। नागरिकों की एक सभा बैठी। उन्होंने अपनी बातों का अंत तक समर्थन किया। नागरिकों की सभा ने दो अपराध करने का दोषी माना; एथेंस के लोगों की बुद्धि भ्रष्ट करने तथा अधार्मिकता एवं नास्तिकता का प्रचार करने का। जहर देकर मारने की सजा दी गयी।

सत्य का वक्ता जहर पीकर सत्य पर अडिग रहने का प्रमाण दिया।

कबीर हिन्दुस्तान में हुए तब लोदी वंश की सल्तनत थी। उस समय के दो प्रमुख समुदाय—हिन्दू एवं

मुसलमान थे। वीं सदी के प्रारंभ में महमूद गजनवी ने हिन्दू-बौद्ध मंदिरों को लूटा और नष्ट किया जिसे सभी मुसलमान सुल्तानों ने जारी रखा था। मंदिर लूटना और जबरन मुसलमान बनाना तत्कालीन राजधर्म-इस्लाम-का प्रमुख कार्य चलता रहा। हिन्दू अपने ही धर्म मानने वाले बहुसंख्यक समाज को शूद्र-अछूत कहकर दुत्कारते रहे। वर्णाश्रम-धर्म को ईश्वरीय विधान बताकर सामाजिक-आर्थिक-बौद्धिक शोषण-तंत्र को मजबूत बनाते रहे। 'गो मल-मूत्र को सिर पर लगाते और मानव-पुत्र को मंदिर से दूर खदेड़ते' इसे स्वर्ग और मोक्ष का साधन मानने लगे थे। कबीर आर्तनाद सुन-सुनकर मर्माहत थे। उनके विरोधी स्वर काशी से दूर विदेशों तक पहुंचने लगे। धमकी मिलने लगी थी। कहीं-कहीं सताने की घटना भी होने लगी थी। संतों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था—

'संतो बोले ते जग मारे।

अनबोले ते कैसक बनि है, शब्दहि कोई न बिचारे।'

सत्य बात कहने पर जग के लोग मारने दौड़ते हैं परन्तु चुप कैसे रहा जा सकता है। शब्दों पर तो कोई विचार ही नहीं करता।

सत्य के अन्वेषकों को यूरोप में भी सताया जाता रहा है। कबीर के जीवन काल में ही ई. में कौपरनिकस नामक खगोलशास्त्री का जन्म पोलैंड में हुआ था जिसने सूर्य केन्द्रीय ब्रह्मांड का अनुमान किया था। तद्विषयक पृष्ठ का एक नोट अपने मित्रों में बांटा। जब उसकी खोज निर्णायक स्तर पर थी तभी पूरे यूरोप में उसके सिद्धान्त की अफवाह फैल गयी थी। चारों तरफ से प्रकाशित करने की मांग होने लगी थी तथापि अनजान भय के कारण वह टालता रहा। अंततः उसने अपनी श्रेष्ठ कृति को पोप पॉल तृतीय को समर्पित करते हुए अपने भय को मृदु शब्दों में व्यक्त किया। 'मध्यकाल के अंत तक चर्च में अनेक दोष उत्पन्न हो गये थे। गिरजाघर भ्रष्टाचार तथा विलासिता के स्थान बनने लगे थे। पोप जिसकी आज्ञा धार्मिक क्षेत्र में सर्वोपरि होती थी, स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि समझने लगे। पोप किसी भी राजा को पदच्युत, किसी भी देश

के गिरजाघरों को बंद तथा किसी भी व्यक्ति को ईसाई धर्म से बहिष्कृत कर सकता था।' इसके फलस्वरूप वहां धर्मसुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। उस समय के कलाकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि धार्मिक प्रतिबंधों से मुक्त नहीं थे। वे धार्मिक विषयों के अतिरिक्त कुछ सोचने में समर्थ न थे। 'जनता व राज्य पर चर्च का प्रभाव छाया था। लोग अंधविश्वासी थे तथा किसी भी आविष्कार अथवा परिवर्तन को जादू-टोना समझते थे। चर्च के अधिकारी परिवर्तन नहीं चाहते थे, क्योंकि इससे उनके एकाधिकार के आहत होने का खतरा था। धर्माधिकारी वैज्ञानिकों एवं विज्ञान के विरोधी थे तथा विज्ञान की उन्नति में बाधक थे। वैज्ञानिकों को वे नास्तिक मानते थे।'

'कौपरनिकस ने टॉल्मी की विचारधारा को गलत प्रमाणित किया था। टॉल्मी का सिद्धान्त था कि सौरमण्डल का केन्द्र पृथ्वी है जिसके चारों ओर अन्य ग्रह घूमते हैं। कौपरनिकस ने प्रमाणित किया था कि सौरमण्डल का केन्द्र सूर्य है जिसके चारों ओर पृथ्वी घूमती है। उसे चर्च द्वारा डराया-धमकाया गया।'

ई. में गैलीलियो नामक वैज्ञानिक का जन्म इटली में हुआ था। 'गैलीलियो ने पेण्डुलम-घड़ी तथा दूरबीन का आविष्कार किया। उसने कौपरनिकस के सिद्धान्तों का सत्य होना प्रमाणित किया। गैलीलियो ने प्रमाणित किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। उसे अपने आविष्कारों के कारण अत्यन्त परेशानी का सामना करना पड़ा। वृद्धावस्था में उसे चर्च के अधिकारियों के समक्ष उपस्थित होना पड़ा। उस पर इस बात का दबाव डाला गया कि वह अपने आविष्कारों को असत्य माने किन्तु ऐसा करने से उसने इनकार कर दिया।'

गूगल इंटरनेट पर लिखा है कि कैथोलिक चर्च द्वारा गैलीलियो के सूर्य केन्द्रीय-सिद्धान्त को गलत माना

. यूरोप का इतिहास, डॉ. ए. के. मित्तल, पृष्ठ

. वही, पृ.

. वही, पृ. -

गया तथा निंदा किया गया। ई. में चर्च संबंधी सभा के द्वारा इसे पवित्र ग्रन्थ के विपरीत घोषित किया गया। ई. में धर्म न्यायाधिकरण द्वारा पुनः उस पर विचार किया गया तथा उसकी खोज को अपधर्म करार देते हुए अपने कथन को त्यागने के लिए मजबूर किया गया। गैलीलियो सत्य पर अडिग रहा और जीवन के अंतिम नौ वर्ष नजरबंद होकर गुजारा।

संसार भर में ऐसे उदाहरण मिलते हैं। लेकिन कबीर के जीवन से पता चलता है कि आधुनिक युग के बौद्धिक जगत में जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं थी तब गैलीलियो से सौ वर्ष पहले ही संत कबीर एक निर्भीक एवं मानवता के प्रखर वक्ता के रूप में विख्यात हो चुके थे। सिकन्दर लोदी जैसा क्रूर एवं धर्मांध सुल्तान भी कबीर का कुछ नहीं बिगाड़ सका।

संत कबीर बनारस के वातावरण में भगवान एवं

उसकी सृष्टि के बारे में सुन-सुनकर भगवान की खोज में लगे रहे। अंततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि—

‘मोको कहां दूँदे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकान्त निवास में।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काशी कैलाश में
खोजी होय तुरत मिल जाऊं, एक पल की तलाश में।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वासों की स्वांस में।

प्रत्येक प्राणी के स्वांस में ईश्वरत्व का निवास मानने वाला महान क्रांतिकारी, भविष्यद्रष्टा, युगप्रवर्तक और धर्म-व्यवस्थापक संत कबीर की वाणी युगों-युगों तक अमर रहेगी। ज्ञान की ज्योति जलाने और अन्तर्मन के अंधकार को मिटाकर जीवन में प्रकाश करने के लिए जगत आभारी रहेगा। उनके प्रगटोत्सव के पावन पर्व पर शत-शत नमन।

कबीर और मानव समाज

लेखक—डॉ. राममिलन

जीव जगत में मन-मस्तिष्क की प्रधानता के कारण मनुष्य सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। विचार मनुष्य की धरोहर है। मेरी दृष्टि में विचार ही समय है। समय कुछ और नहीं परिवर्तन है। परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है, जो सब पर समान रूप से लागू होता है। फिर चाहे वह जड़ प्रकृति हो या विचार। चेतन या ‘मैं तत्त्व’ अजन्मा है। यही एक ऐसा तत्त्व है, जो परिवर्तनशील नहीं है, अर्थात् परिवर्तन का नियम इस पर लागू नहीं होता। चेतन का ही लक्षण है चेतना। चेतना जीव जगत के समस्त प्राणियों में होती है, लेकिन मनुष्य में यह सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली होती है। चेतना कुछ और नहीं एक प्रकार की ऊर्जा है। सभी जानते हैं कि ऊर्जा को न उत्पन्न किया जा सकता है और न ही उसका अन्त होता है। ऊर्जा का परिवर्तन या संवहन भी एक

अटल नियम है। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सृजन और प्रलय साथ-साथ चलते रहते हैं, वैसे ही मनुष्यों के समूह, समाज, झुंड या संघ में भी जहां एक तरफ सृजनात्मक विचार वाली ऊर्जा का संचरण होता है, वहीं दूसरी तरफ विध्वंसकारी विचार नामक ऊर्जा भी तीव्र गति से प्रवाहित होती है। इस प्रकार समाज का एक हिस्सा जहां सृजनात्मक एवं प्राणि जगत के लिए कल्याणकारी और वरदान साबित होता है, तो वहीं दूसरी तरफ, विघटनकारी नीतियां, मानव समाज के साथ-साथ सम्पूर्ण जीव जगत के लिए विनाश का कारण बनती हैं।

संत महापुरुष भी इंसान ही होते हैं। काल-परिस्थिति के अनुरूप उनके कृतित्व, आचरण एवं व्यवहार से, मानव समाज उनके विचारों को अपनाकर

मानवता की दिशा में अग्रसर हो सकता है। लेकिन इन महापुरुषों को मोहरा या हथियार बनाकर, इनकी आड़ में, मनुष्य अपने कुकृत्य, पाखण्ड, आडम्बर से मानवता का शोषण करने लगे तो शायद यह किसी अभिशाप या जघन्य अपराध से कम नहीं।

कबीर चेतना पुंज हैं, ऐसे विचारों का जो कभी समाप्त नहीं होते, जिनका कोई अन्त नहीं। जब तक विश्व-ब्रह्माण्ड में मनुष्य रहेगा, तब तक कबीर की प्रासंगिकता, चेतना या विचार जीवित रहेंगे।

मनुष्य जाति के लिए भले ही यह शुभ संकेत न हो, लेकिन इसे नकारा नहीं जा सकता। बल्कि इस आशंका को भी दरकिनारा नहीं किया जा सकता कि आने वाले समय, काल, परिस्थिति एवं परिवेश में कबीर की प्रासंगिकता और बढ़ेगी।

एक जीवित मनुष्य स्पष्ट रूप से देख सकता है कि जहां एक तरफ भौतिकतावादी वैज्ञानिक विचारधारा अतिक्रमण करते हुए प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन करके प्राकृतिक प्रलय की पटकथा लिख रही है, वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक क्षेत्र अपंग होकर, निरीह याचक की भांति, जड़ प्रकृति या फिर काल्पनिक देवी-देवताओं एवं ईश्वर से अपने जीवन, मुक्ति, मोक्ष, अमरता की भीख-सा मांगता नज़र आ रहा है।

आश्चर्य तो तब होता है, जब महर्षि कपिल को अवतार घोषित करके जैसे उन पर कोई उपकार कर दिया गया हो। जबकि सांख्यदर्शन जैसे महत्त्वपूर्ण दर्शन, जिसमें जड़ प्रकृति के शोध के साथ-साथ चेतन बोध का प्रमाण तथ्यपरक, भौतिकवादी विज्ञान और आध्यात्मिक बोध दोनों का संगम है, लेकिन उसका सर्वथा त्याग-सा हो गया। बदले में उन्हें नास्तिक की उपाधि नवाजी गई। यही हाल महर्षि कणाद एवं अन्य पारखी एवं चिन्तनशील संत महापुरुषों के साथ हुआ। आज सोचने पर विवश होना पड़ रहा है कि यदि कबीर-जैसे संत-महापुरुष न हुए होते तो क्या होता?

भक्तराज पीपा के ये वचन ध्यान देने योग्य हैं—जो कलि मांझ कबीर न होते...। तौ लौं... वेद अरु कलियुग मिल करि भगति रसातल देते।

या फिर परम वैष्णव संत श्री नाभादास जी महाराज के उद्गार सर्वथा सत्य मालूम पड़ते हैं—

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदरसनी।
भक्ति विमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो।
योग यग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पच्छपात नहिं वचन सबहिं के हित की भाखी
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुखदेखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी

(भक्तमाल)

भारतीय समाज के लिए इससे अधिक हास्यास्पद और क्या हो सकता है कि भारतीय लोकतन्त्र के मन्दिर में, लोकसभा और राज्यसभा दोनों ही सदनों में शीतकालीन सत्र के दौरान असहिष्णुता के मुद्दे पर क्या सत्तापक्ष या फिर विपक्ष कबीर की दुहाई देते नज़र आये, लेकिन दुर्भाग्य इस देश का, कि कबीर के किसी साम्प्रदायिक या मजहबी खांचे में न फिट होने के कारण, किसी जाति या तथाकथित धर्म विशेष का वोट बैंक न होने के कारण, कबीर के मानवतावादी धर्म की अवहेलना होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है।

कबीर मनुष्य थे, सच्चे मनुष्य। उनका आदर्श, आचार-विचार, करनी-कथनी-रहनी मानवतावादी है, अवतारवादी नहीं। जो व्यक्ति न हिन्दू हो, न मुसलमान, न सिक्ख और न ही ईसाई। वह क्या होगा, विचार का विषय है। धर्मान्ध विचार नहीं करते। विचार पारखी या फिर निष्पक्ष इन्सान ही कर सकते हैं। जो किसी तथाकथित धर्म यानी मजहब, सम्प्रदाय के खूंटों से बंधा नहीं होता, जिन्हें जाति, उपजाति नामक कलंक कभी सपने में भी न छूता हो, उन्हें सिर्फ और सिर्फ मनुष्य की एक ही जाति दिखाई देती है। ऐसे इन्सान आज भी हैं और आगे भी रहेंगे। निःसन्देह जैसे-जैसे मानव समाज में ऐसे इन्सानों की संख्या बढ़ेगी, कबीर नामक चेतना की प्रासंगिकता कम होती जायेगी। यही सम्पूर्ण मानव समाज एवं मानवता की जीत होगी, और कबीर जैसे संत महापुरुषों के प्रति सच्ची श्रद्धा, भक्ति और समर्पण।

नसीब की चाभी कर्म के हाथ

लेखक—डॉ. गो. दा. फेगडे

संसार में दो प्रकार के लोग पाये जाते हैं—कोई भाग्य को दोष देकर रोता-कुढ़ता है तो कोई भाग्य को चुनौती देकर हंसते-गाते सफलता की मंजिल की ओर चलता रहता है और एक दिन वह उसे पा भी लेता है। भारतवर्ष में आम तौर पर ऐसी धारणा है कि मनुष्य को जो भी यश-अपयश, अमीरी-गरीबी या सुख-दुःख मिलता है—वह उसके भाग्य से मिलता है, वह पूर्वजन्म के कर्म का फल है। भाग्यवादी लोग समझते हैं कि भाग्य को बदला नहीं जा सकता, वे उसे बदलने की कोशिश भी नहीं करते। कर्मवादी लोगों को यह धारणा मंजूर नहीं, वे परिस्थिति के आगे झुकते नहीं, अपितु उस पर विजय पाने की कोशिश करते हैं। यह सच है कि जीवन में कुछ बातें भाग्य से मिलती हैं। फिर भी जिन्दगी भर भाग्य का गुलाम बने रहना पलायनवाद की निशानी है। जिन्दगी तो ताश के खेल की तरह होती है। ताश के खेल में आपको कौन-से पत्ते मिलेंगे—यह नसीब की बात होती है, लेकिन मिले हुए पत्ते किस तरह खेले जायें—यह आपके ही हाथ में होता है। पत्तों की चाल चलना आपकी होशियारी, कुशलता और पुरुषार्थ की बात होती है। कर्ण ने महाभारत में कहा है—*दैवायत्तं कुले जन्मः मदायत्तं तु पौरुषम्।* अर्थात् कौन से कुल में जन्म लेना यह भाग्य के हाथ में है, लेकिन पराक्रम करना मेरे हाथ में है। समाज में भी हम देखते हैं कि कुछ लोग ऊंचे खानदान में पैदा होते हैं, लेकिन कर्म से हीन होते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग निम्न कुल में पैदा होकर भी महान कार्य करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं होती, खाने के मुहताज होते हैं, लेकिन वे लगन और मेहनत से धनवान बन जाते हैं, कुछ चांदी का चम्मच मुंह में डालकर पैदा होते हैं, लेकिन अपनी नादानी से दर-दर के भिखारी बन जाते हैं। भगवान (भाग्य) ने तो उन्हें चमन (फुलवारी) दिया होता है, लेकिन वे उसको अपनी कर्मदरिद्रता के कारण सहारा (रेगिस्तान) बना देते

हैं। जैसा जिसका कर्म होता है, वैसा उसको फल मिलता है। संत कबीर ने सही कहा है—

करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय।

बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय

कर्म करते समय तो विचार किया नहीं, अब पछताने से क्या लाभ? बबूल का पेड़ बोकर आम के फल कैसे खाने को मिलेंगे? उसी तरह अधर्म का आचरण करने वाले को धर्म का फल कैसे मिलेगा?

सच तो यह है कि नसीब और कर्म—ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वक्त कहो, कर्म कहो, नसीब कहो या कोई भी नाम दो, कर्म के सहस्र नाम हैं, सब कुछ करने वाला एक मन ही है। जो सत्कर्म करता है, उसका नसीब खुलता है। यह कहना गलत है कि भारत में संत-महात्माओं ने धर्म की अफीम देकर लोगों को निकम्मा बनाया है। अज्ञानी लोग ही ऐसा कहते हैं। आजतक सब सन्तों ने प्रयत्नवाद की ही सीख दी है।

महाराष्ट्र के संत समर्थ गुरु रामदास ने कहा है—*‘यत्न तो देव जाणावा’* अर्थात् प्रयत्न को भगवान समझो। संत तुकाराम ने कहा है—*‘आधी कष्ट मगफल, कष्टचि नाही ते निर्फल।’* *‘केल्याने होत आहे रे आधी केलेचि पाहिजे।’* इन वचनों का भावार्थ है, पहले श्रम करो, फिर फल मिलेगा, श्रम ही नहीं किया तो फल कैसे मिलेगा? इसलिए पहले कोशिश करनी चाहिए। *‘ईश्वर उन्हीं की मदद करता है, जो स्वयं की मदद करते हैं’* ईसा मसीह का यह वचन दुनिया भर में मशहूर है। गौतम बुद्ध ने *‘स्वयंदीप’* बनने का सन्देश दिया है। भगवान श्रीचक्रधर स्वामी ने स्पष्ट रूप से कहा है—*‘पुरुषप्रयत्नीं दैवाचें साहय’* (आचार) अर्थात् नसीब कोशिश करने वाले की सहायता करता है, सिर्फ भगवान के भरोसे पर कामयाबी कैसे मिलेगी?

आलस्य मनुष्य का महान शत्रु है, इसके कारण अनेक अनर्थ होते हैं। जैसे—

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्।

अधनस्य कुतो मित्रममित्रस्य कुतो सुखम्।

अर्थात् आलसी मनुष्य को विद्या कैसे प्राप्त होगी? विद्याविहीन को धन कैसे प्राप्त होगा? निर्धन को कौन मित्र बनायेगा? और जिसको मित्र ही नहीं, वह कैसे सुखी बनेगा?

धर्मग्रन्थों के सरताज भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग का ही समर्थन किया है, कर्म से दूर भागने वाले अर्जुन को कर्म करने के लिए प्रेरित किया है। अर्जुन सम्पूर्ण मानव जाति का प्रतिनिधि है, भगवान श्रीकृष्ण ने उसे समझाया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि (/)

तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं, इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

एक अन्य श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः

(गीता /)

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

इस तरह श्रीमद्भगवद्गीता में 'कर्मत्याग' नहीं बल्कि 'फलत्याग' करने को कहा है, व्यवहार में लोग इसके विपरीत बरताव करते हैं। हर कोई कर्म नहीं, लेकिन उसके फलों को प्राथमिकता देता है। इतना ही नहीं दूसरों के श्रम का फल भी हड़पना चाहता है। मनुष्य की इसी वृत्ति के कारण समाज में भ्रष्टाचार, असंतोष और अशान्ति फैलती है।

बगैर कर्म के फल की अपेक्षा करना व्यर्थ है—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः

किसी भी कार्य में प्रयास करने से ही सफलता प्राप्त होती है, केवल इच्छा करने से नहीं। सोये हुए शेर के मुँह में प्राणी स्वयं थोड़े घुसने वाले हैं।

ऐसा कहा जाता है कि प्रतिभा प्रतिशत मेहनत और प्रतिशत हुनर होती है (Intelligence is 90% Perspiration and 10% Inspiration)। मेहनत से क्या

नहीं मिलता? तपश्चर्या से परमेश्वर (आत्मस्थिति) की प्राप्ति भी हो सकती है। इंसान अनहोनी को होनी बना देता है। कल तक जो बातें असम्भव लगती थीं, वे आज वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम के कारण सम्भव हो गयी हैं। यहां तक कि मानव चांद और मंगल पर भी जा पहुंचा। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों ने घोर तपश्चर्या से आश्चर्यजनक सामर्थ्य प्राप्त किया था। राजा भगीरथ कड़ी मेहनत करके स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर लाये थे, आज भी ऐसे भगीरथ हैं। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की ही बात है—भारत के बिहार राज्य में एक गांव से शहर जाने के लिए रास्ते में पहाड़ होने के कारण पचास कि.मी. का फेरा लगाकर जाना पड़ता था। दशरथ मांझी नाम के एक साधनहीन किंतु उत्साही व्यक्ति ने अपने दम पर छेनी-हथौड़े से पहाड़ के पत्थर को तोड़ने की ठानी। शुरू में लोगों ने उसे पागल कहा, परंतु उसकी परवाह न करते हुए उसने पहाड़ तोड़ना शुरू किया। उसकी लगन इतनी थी कि कुछ सालों में उसने दस फिट चौड़ाई की सुरंग पहाड़ के आर-पार खोद डाली। इससे पचास कि.मी. की शहर की दूरी सिर्फ दस कि.मी. तक आ गयी। इस प्रकार अगर लगन, मेहनत, आत्मविश्वास और श्रद्धा हो तो कोई भी मुसीबत शूर आदमी को निराश नहीं कर सकती। कामयाबी तो उसके पैरों की दासी होती है। महाराष्ट्र के महान समाजसेवक श्रीबाबा आमटे कहते हैं—

शृंखला असू दे पायी मी गतीचे गीत गायी।

दुःख करायाला आता आसवांना वेल नाही

पैरों में बेड़ियां हुई तो क्या हुआ, मैं चलना बन्द नहीं करूंगा। उनका शोक करने के लिए (आंसू बहाने के लिए) मेरे पास वक्त नहीं है।

निराशा कामयाबी में रोड़ा डालती है। एक किसान ने अपने खेत में कुआं खुदवाना शुरू किया, बीस फीट खुदवाने के बाद पानी नहीं मिला तो उसने दूसरी जगह पर पच्चीस फुट खुदवाया, फिर भी पानी नहीं मिला। उसने तीसरी जगह तीस फीट खुदवाया तो भी पानी नहीं मिला। वह निराश होकर रोने लगा, उसके एक भले मित्र ने उसे समझाया—“खोदने का काम आधा-अधूरा छोड़ने से पानी कैसे मिलेगा? पानी मिलने तक एक ही

जगह खोदते रहो, पानी जरूर मिलेगा।” उसने तीसरी जगह और दस फीट खोदा, वहां उसे पानी-ही-पानी मिला। इस कथा का तात्पर्य यह है कि किसी भी काम में कामयाबी मिलने के लिए संयम, साहस, सातत्य और सतर्कता चाहिए। श्रीचक्रधर स्वामी कहते हैं—‘पडे तवं धाववे, मरे तवं करावे।’ (आचार मालिका) ‘धड तुटे तवं धावावे, देह पडे तव करावे परि जीवन न सोडावे।’ (आचारमालिका) इन वचनों का भावार्थ यह है कि जब तक देह में जान है, जब तक देह सक्षम है, तब तक कार्य करना चाहिए, आधा-अधूरा नहीं छोड़ना चाहिए। श्रीचक्रधर स्वामी ने तो ऐसा भी कहा है कि ‘उपायें न पविजे ऐसैं काहीं असे।’ (विचारमालिका)

अर्थात् प्रयास करने से भी नहीं मिलता, ऐसा इस संसार में कुछ भी नहीं है। ‘पुरुष जेतुल जेतुला प्रयत्न करी, तेतुल-तेतुले दैव साहयाते करी।’ (आचारमालिका) अर्थात् पुरुष जितना ज्यादा प्रयत्न करेगा, उसका भाग्य उतना ज्यादा उसकी सहायता करेगा। महाराष्ट्र के संत तुकाराम ने भी कहा है—‘असाध्य ते साध्य करीता सायास।’ अर्थात् धैर्य के साथ कोशिश करने से असाध्य काम भी साध्य हो जाता है। उर्दू में एक कहावत है—‘हिम्मत-ए-मर्दा, तो मदद-ए-खुदा’ अर्थात् हिम्मत रखनेवाले की मदद परमेश्वर करता है।

लौकिक जीवन में ही नहीं, पारलौकिक जीवन में भी कर्म, आचरण और अभ्यास महत्त्व रखते हैं। अध्यात्म शास्त्र के अनुसार कर्म का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर से जुड़ा रहता है—

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति

जिस तरह हजारों गौओं में बछड़ा अपनी माता की तरफ ही जाता है, उसी तरह मनुष्य के किये हुए कर्म (अगले जन्म में भी) उसके साथ ही जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में बार-बार कर्म का समर्थन किया है। निष्काम कर्मयोग तो गीता के सन्देश का सार है—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः

(गीता /)

अर्थात् शास्त्रविधि से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

भगवान श्रीचक्रधर स्वामी ने भी कहा है—‘आचरेतयाचा धर्मु’ (आचारमालिका) अर्थात् आचरण करने वाले का ही धर्म होता है। आचरण के बिना धर्म की खोखली बातों का कोई अर्थ नहीं। धर्म में ज्ञान (ब्रह्मविद्या का सिद्धान्त) और कर्म (आचरण) इन दोनों को महत्त्व दिया गया है। ज्ञान के अभाव में कर्म अन्धा होता है और कर्म के अभाव में ज्ञान लंगड़ा होता है। यदि धर्म का आचरण ही न होता हो तो वह धर्म किस काम का? वह पंखहीन पक्षी की तरह बेकार है। निम्नलिखित श्लोक में आचार का विशद महत्त्व बताया गया है—

आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः।

आचारः परमं ज्ञानम् आचारात् किं न साध्यते

आचार श्रेष्ठ धर्म है, आचार श्रेष्ठ तप है, आचार श्रेष्ठ ज्ञान है, आचार से क्या नहीं साध्य होता?

दुनिया का कोई भी धर्म कोरे (कर्महीन) दैववाद का समर्थन नहीं करता। ‘निष्काम कर्मयोग’ तो हिन्दू धर्म की आधारशिला है। नसीब पर रोनेवालों के लिए निम्नलिखित श्लोक बहुत उपयुक्त होगा—

उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।

षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत

अर्थात् उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रम—ये छः गुण जिसके पास हैं, उसकी देवता भी सहायता करते हैं यानी उसका नसीब फलता है।

(साधार : कल्याण, जुलाई,)

लोग भरोसे कौन के, बैठ रहे अरगाय।
ऐसे जिघरहिं जम लूटे, जस मटिया लुटे कसाय
करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास
(सद्गुरु कबीर, बीजक साखी)

सूफी संत राबिया

लेखक—देवेन्द्र दास

भूमिका

मुसलमानों में एक महिला महान संत हुई हैं, नाम है राबिया। लगभग वर्ष पहले हिंदुस्तान में स्वामी शंकराचार्य का समय था, लगभग वही समय भारतवर्ष से दूर बसे खाड़ी देश इराक के एक शहर 'बसरा' में राबिया का रहा। बसरा शहर में रहने के नाते उनका पूरा नाम हुआ—राबिया-अल-बसरी। अपने निदाग पवित्र जीवन और ज्ञान उपदेशों के नाते राबिया सूफी संतों में सिरमुकुट मानी गयी। यद्यपि महिलाओं को धार्मिक अधिकार न थे और उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा नंबर दो पर रखा गया फिर भी राबिया जैसा अनूठा मुसलमानों में और कोई न हुआ। राबिया ने लगभग वर्षों का लंबा जीवन जिया और महज स्त्री-जैसा न जीकर संत जीवन जीया।

इस्लाम में पुरुष और स्त्री के बीच मौलिक भेद नहीं माना गया है। ऐसा होने पर भी स्त्री के लिए सीमाएं और बंधन ज्यादा हैं। राबिया ने इन सीमाओं और बंधनों को लांघकर जो अपना मुकाम बनाया, वह अनूठा है। हिंदू समाज में जो महत्त्व मां सीता, पार्वती, भगवती, सरस्वती, मीरा एवं सहजोबाई आदि का है; ईसाइयों में ईसा की मां मरियम का है; मुस्लिम संतों में हजरत मोहम्मद की पुत्री फातिमा का है, वही स्थान सूफी-संतों में राबिया का है।

जन्म एवं प्रारंभिक जीवन की कठिनाइयां

राबिया का जन्म लगभग ई. में इराक के शहर बसरा में हुआ था। घर बहुत ही गरीब था। जिस रात नवजात शिशु ने जन्म लिया घर में दीया जलाने के लिए न तेल था, न दीये में बाती। यहां तक कि नवजात शिशु को लपेटने के लिए कपड़ा तक न था। पत्नी के कहने पर पति जब अपने पड़ोसी के यहां सहायता के लिए गया तो उन्होंने दरवाजा तक न खोला। कुछ दिनों बाद बादशाह की ओर से गरीबों के लिए कुछ दान दिया गया, तो इस परिवार को भी जीवित रहने के लिए अपना हिस्सा मिला। परिवार में पहले से तीन लड़कियां थीं।

यह चौथी थी। अतः इसका नाम राबिया रख दिये। राबिया का अरबी भाषा में अर्थ होता है—चौथी कन्या।

परिवार में संकट थमने का नाम न ले रहे थे। अभी बच्ची थोड़ी ही बड़ी हो पायी थी कि उसके माता-पिता एक के बाद एक संसार से उठ गये। चारों बच्चे अनाथ हो गये। किसी तरह दिन काट रहे थे कि बसरा शहर में अकाल पड़ा। पेट भरने के लिए लोग काफिलों में इधर-उधर जाने लगे। ऐसे कुदिन के चलते चारों बहनें बिछुड़ गयीं।

गुलामी का जीवन

एक दिन अपने शहर से दूर एक बाजार से राबिया गुजरती थी तभी एक गलत आदमी की निगाह उस पर पड़ गयी। उसने राबिया को दबोच लिया और गुलाम के रूप में छः अशरफी के बदले उसे एक अमीर को बेच दिया। बेचारी राबिया गुलामी का जीवन जीने के लिए मजबूर हो गयी। नया मालिक बड़ा कठोर था। वह दिन भर उससे कड़ा काम लेता और जरा भी दया न करता। इतने पर भी वह सुरक्षित न थी। एक दिन जब राबिया मालिक के काम से घर से बाहर जा रही थी तो एक अजनबी उसके पीछे लग गया। राबिया उससे बचने के लिए भागी और हड़बड़ी में सड़क पर गिर कर अपनी कलाई तोड़ बैठी। पीड़ा और बेबसी से वह कराह उठी। उसका चेहरा धूल-धूसरित हो गया। उसने अल्लाह को याद किया—या अल्लाह, इस जगह मैं अजनबी हूं। माता-पिता कोई सहायक नहीं हैं, अनाथ हूं, दासी हूं और गिरकर अपनी कलाई तोड़ ली हूं। प्रभु, मेरे दुखों का कोई अंत नहीं लगता। यद्यपि मैं कुछ नहीं चाहती, बस तुम्हारी प्रार्थना-इबादत करते दिन काटना चाहती हूं। क्या मैं इतना भी नहीं कर सकती? उसका चेहरा आंसुओं से तर-बतर था। खैर, किसी तरह वह बची। मालिक के घर वापस पहुंची।

गुलामी से मुक्ति

वह दिन में शांत रहकर अपना काम करती। उपवास रखती और अपना चिंतन परमात्मा की भक्ति में

लगाए रखती। एक रात घर के मालिक ने उसके कमरे में प्रकाश देखा। देखने पर पाया कि राबिया जाग रही है और वह प्रार्थना में लीन है। उसकी गर्दन प्रार्थना में झुकी है। मालिक की दृष्टि बदली। वह उस पर कृपालु हो गया। कठोरता एवं कटुता गायब हो गयी। एक ईश्वर-भक्त महिला उसकी दासी है जो किसी से कुछ नहीं चाहती, मौन रहकर अपना काम करती है—मालिक राबिया के प्रति सम्मान से भर उठा और उसे गुलामी से मुक्त कर दिया। चाहे तो राबिया उसके घर में सदस्य की तरह रह सकती है और चाहे तो स्वतंत्र नागरिक की तरह जीने के लिए जा सकती है। अब वह उसकी गुलाम नहीं रही।

हज यात्रा

राबिया ने अलग होकर रहना स्वीकार किया और वहां से निकल पड़ी। लोगों ने उसे राहखर्च दिया और एक खच्चर पर सामान लादकर विदा किया। वह धार्मिक यात्रा (हज) के लिए मक्का जाने को निकल पड़ी। रास्ते में रेगिस्तान में उसका खच्चर मर गया। दूसरे गधे का इंतजाम हुआ और वह अपनी हज यात्रा के लिए मक्का शहर पहुंच सकी।

इस जगह कुछ चमत्कारिक कहानियां भी गढ़ी गयी हैं। पहली यह है कि मरे खच्चर को जीवित करने के लिए उसने प्रार्थना की और वह मृत जानवर जीवित हो उठा किंतु यह विचार करने की बात है कि प्रार्थना से कोई मृत कैसे जीवित हो उठेगा? दूसरी कहानी है कि जब वह मक्का नहीं पहुंची तो मक्का नगर स्वयं ही उठकर उसकी तरफ चल पड़ा। राबिया ने कहा—मुझे मालिक के दर्शन करने हैं, मकान के नहीं। मकान (काबा) से मुझे क्या वास्ता? काबा मुझे क्या खुशी देगा? विचारने योग्य है कि शहर-मकान उठकर किसी के दर्शन के लिए कैसे चल देंगे भला? यह महिमा में गढ़ी गयी कहानी है। भाव है कि बाहरी स्थान का मूल्य नहीं, रहने वाले का मूल्य है।

वापसी

हज यात्रा पूरी करके राबिया अपने जन्म स्थान बसरा शहर लौट गयी। वहीं रहने लगी। उसके पास रहने के लिए एक छोटा-सा घर था। जमीन का एक छोटा टुकड़ा भी था जिस पर वह मक्का की खेती कर

लेती, इसी से उसका गुजारा हो जाता। वह किसी से कुछ चाहती नहीं, मांगने की तो बात ही दूर थी। धनियों से बचकर रहती।

सूफी संत

मुसलमानों में सूफी संत होते हैं। ये ऊन का बना चोला पहनते हैं सर से पैर तक, जिसे सूफ कहते हैं, इसी से वे सूफी कहलाते हैं। सृष्टि को बनाने वाला एक खुदा है और मुहम्मद उसके संदेशवाहक हैं, ये ऐसा मानते हैं। लेकिन कट्टर नहीं होते, कर्मकांड नहीं करते। संयम-परहेज से रहते हैं, दुनिया से उदास रहते हैं, किसी से कुछ चाहते नहीं, गरीबी में जीते हैं। ये घूमते भी रहते हैं और एक निश्चित स्थान में रहते भी हैं, दोनों प्रकार के होते हैं। जिस जगह में रुकते हैं, उस जगह को खनकाह कहा जाता है। यहीं इनकी शिक्षा-दीक्षा, सत्संग-ध्यान की विधिवत व्यवस्था होती है। बसरा उस समय सूफियों का प्रमुख स्थान था। राबिया के मन में इन संतों के जीवन का बड़ा प्रभाव था। वह इनकी प्रेरणा से परहेज और संयम का जीवन जीने लगी।

नये जीवन में प्रवेश

राबिया का मन दुनिया से एकदम उचाट था। यद्यपि वह युवा थी, स्वतंत्र और आचारवान महिला थी। अनेक लोग उससे विवाह को उत्सुक थे। तमाम धनी लोगों ने भी विवाह का प्रस्ताव उस तक भेजा किंतु राबिया ने सबको ठुकरा दिया। वह आजीवन अविवाहित रही। उसने कठोर शब्दों में कहा—ऐ भोगों के इच्छुक! अपने जैसा ढूढ़ो। क्या तुमने मुझमें ऐसी कोई चाहना देखी है? इस संसार को छोड़ने में शांति है जबकि इसकी चाहना दुख लाती है। अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखो, संयम से रहो, दूसरों को अपना स्वामी न बनाओ। मृत्यु के दिन की सदैव याद रखो। एक क्षण के लिए भी मेरा मन भटके, यह मुझे सहन नहीं; अतः ये सब चर्चा न करें। अलविदा।

“O Sensual one, seek another sensual like thyself. Hast thou seen any sign of desire in me?” Renunciation of this world means peace, while desire for it brings sorrow. Curb your desires and control yourself and do not let others control you. As for yourself, give your mind to the day of death. It does not please me to be distracted from Him for a single moment. So farewell.

मेरे भाइयो, मेरा सुख एकांत में है, जहां मेरा प्रेमी-परमात्मा हर समय मेरे साथ है। उस प्रभु के प्रेम-जैसा इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। वही मेरे जीवन का मूल है और उसी से मुझे सुख है। मैंने अपने आपको दुनिया के लोगों से अलग कर लिया है। प्रभु से मिलन, बस यही आशा है, यही मंजिल है मेरी।

विवाह तो उनके लिए है जिनका कोई भौतिक अस्तित्व हो। यहां तो ऐसा कुछ नहीं रहा अब। मैं तो अब रही नहीं। सिर्फ वही है। मेरा अस्तित्व उसी में समाया है, मैं पूर्णतः उसी परमात्मा की हूँ और उसके आदेश की छाया मात्र हूँ।

साधना एवं तप के दिन

राबिया की उम्र लगभग की हो रही थी। उसने गरीबी का जीवन पसंद किया। यद्यपि अनेक धनी-मानी लोग उसको सहयोग देना चाहते थे किंतु वह किसी से वस्तुओं का उपहार या धन स्वीकार न करती थी। उसकी सिर्फ एक प्यास थी—परमात्मा। एक बार कुछ परिचित लोगों ने कहा—अगर चाहो तो हम लोग तुम्हारे लिए एक सेवक रख दें जो भोजन-पानी की व्यवस्था कर दिया करे। राबिया ने कहा—जो इस दुनिया को चलाता है, उससे मैंने आज तक कुछ नहीं मांगा, फिर तुम लोगों से क्या मांगूँ?

एक बार सात दिनों तक उसने उपवास रखा। कुछ भी न खाया। सोती भी न थी, रात्रि प्रार्थना में गुजारती थी। शरीर से कमजोर हो गयी थी। रात्रि का अंधेरा घिर आया था। एक सज्जन ने उसके दरवाजे पर एक पात्र में भोजन रख दिया। राबिया ने स्वीकार लिया और भीतर

रोशनी के लिए दीपक लेने गयी। जब दीया लेकर आई तो देखा कि बिल्ली उस पात्र को गिरा कर भोजन जूटा कर चुकी है। राबिया ने सोचा, चलो पानी पीकर ही उपवास तोड़ती हूँ। जब मिट्टी के छोटे-से बर्तन में पानी लेकर आयी तो दीया बुझ चुका था। अंधेरे में पानी से भरा पात्र उसके हाथ से छूटकर गिरा और फूट गया। बिना भोजन-पानी के वह बैठी रही। उसके मन में शिकायत उठी—या अल्लाह, मुझ गरीब के साथ तुम क्या जुल्म कर रहे हो? तभी उसकी अंतरात्मा से आवाज आयी—ध्यान से सुनो! तुम्हें सांसारिक चीजें भी मिल सकती हैं किंतु जिस हृदय में सांसारिक कामनाएं भरी हों वहां प्रभु नहीं मिल सकता। हे राबिया, एक ही हृदय में दो कामनाएं नहीं रह सकतीं। अब सोच लो तुम्हें क्या चाहिए? राबिया में एक नयी चेतना उत्पन्न हुई। उसने कहा—ऐसा विचारकर मैंने जीवन में फिर कभी कुछ चाहा ही नहीं और हृदय को सांसारिक कामनाओं से शून्य कर लिया। इस घटना को याद करते हुए उसने कहा कि अब वर्ष बीत चुके हैं। जो भी नमाज-प्रार्थना मैं प्रभु की करती हूँ, यही सोचकर करती हूँ कि यह जीवन की अंतिम प्रार्थना हो सकती है और संसार के लोगों से अपने को सब तरफ से अलग कर लिया है जिससे कि मेरे मार्ग में रुकावट न बने।

शारीरिक कष्ट और बीमारी में वह कभी विचलित न हुई। अनेक बार लोगों ने उसे सहयोग देना चाहा पर वह स्वीकार न करती, खासकर धनियों से दूर रहती। हसन बसरा शहर का एक फकीर था और राबिया का परिचित था। राबिया बीमार थी। हसन उसे देखने आया। हसन ने कहा—अभी रास्ते में एक धनी व्यापारी मिला जो तुम्हारी सेवा में कुछ देना चाहता है। पवित्रात्मा जानकर लोग देना चाहते हैं और तुम मना कर देती हो? राबिया ने कहा—मैं उस आदमी का दिया धन कैसे ले लूँ जिसे मैं जानती तक नहीं। पता नहीं, यह धन उसने किस ढंग से कमाया है। उस व्यापारी से माफी मांग लेना; मैं अपने हृदय में बंधन नहीं बना सकती।

-
- . My peace, O my brothers, is in solitude,
And my Beloved is with me always,
For His love I can find no substitute.
Thou wast the source of my life and from Thee also came
my ecstasy.
I have separated myself from all created beings. My hope
is for union with thee, for that is the goal of my desire.
 - . The contract of marriage is for those who have a
phenomenal existence (who one concerned with the affairs
of this material world). Here, existence has ceased, since I
have ceased to exist. My existence is in Him and I am
altogether His. I am in the shadow of His command.

. Pg. 21-22.
Rabia, The Mystic and her fellow-Saints in Islam by
Margaret Smith. Cambridge University Press 2010,
Newyork.

राबिया की कुटी में चोरी

एक रात एक चोर राबिया की झोपड़ी में कुछ पाने की आशा से घुसा। बहुत दूँढ़ने पर भी कुछ चोरी करने लायक न मिला। तब उसने उसके कपड़े उठाकर भागना चाहा। किंतु प्रकृति को शायद यह मंजूर न था कि एक गरीब महिला के कपड़े चोरी चले जायें। उस चोर का मन बदला और कपड़ों की गठरी वहीं छोड़कर खाली हाथ चला गया।

राबिया की सावधानी

एक बार खाने के लिए सूखी रोटी थी, साथ खाने के लिए प्याज भी न थी। उसके साथियों ने कहा—पड़ोसी से मांग लेते हैं। राबिया ने कहा—मैं किसी से कुछ नहीं मांगती, यह मेरा नियम है। परमात्मा का दिया खाती हूँ, बस। सूखी रोटी मीठी होती है, यही खाते हैं। इतना कहना था कि ऊपर से उड़ती हुई एक चिड़िया की चोंच से एक प्याज का टुकड़ा उसके सामने गिर पड़ा। लोगों ने कहा—देखो-देखो, परमात्मा ने तुम्हें दिया है। राबिया ने गंभीरता से कहा—शैतान भी ऐसी करामात कर सकता है। ऐसा कह कर उसने प्याज मना कर दी और सूखी रोटी ही खायी।

स्वैच्छिक गरीबी

एक फकीर ने बताया—मैं राबिया से मिलने गया। उस समय वह वर्षों की बूढ़ी थी। उसके शरीर की चमड़ी झूलने लगी थी, ऐसा लगता था कि शरीर से अलग होकर गिर जाएगी। उसका घर देखा। बांस की बनी चटाई थी, कपड़ा टांगने का स्टैंड था जिस पर उसके कपड़े टंगे थे। खजूर के पत्तों से बना पर्दा जो दरवाजे पर था। लोगों के बैठने के लिए दरी और पानी के लिए मिट्टी का एक जग। राबिया एक बिस्तर पर थी जो उसका मुसल्ला (नमाज पढ़ने की दरी) भी था।

उसकी गरीबी देखकर किसी ने उसको दूसरे से धन दिलाने की बात कही। राबिया ने कहा—क्या धनी और गरीब को रोटी देने वाला एक परमात्मा ही नहीं है? क्या वह किसी गरीब को उसकी गरीबी के कारण भूल जायेगा? क्या मुझे उसे याद दिलाना होगा? 'जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए।'

राबिया की प्रार्थना

राबिया की प्रार्थना मस्जिद में पढ़ी जाने वाली प्रार्थना न होती थी। वह तो ऐसे प्रार्थना करती जैसे कोई अपने प्रेमी से बतिया रहा हो— loving converse. सूफी संतों में एक प्रार्थना है—O God, Publically I call thee 'My Lord' but in solitude I call thee 'O my Beloved!' अर्थ है—हे प्रभु! सबके सामने हम तुम्हें अपना मालिक कहते हैं किंतु अकेले में तो तुम हमारे प्रियतम हो। राबिया इस प्रार्थना को पसंद करती थी। वह मगन रहती थी। स्वर्ग की चाहना और नरक से बचने के भय से प्रेरित होकर वह प्रभु की प्रार्थना न करती। वह कहती—ऐ मेरे मालिक, नरक से बचने के लिए यदि मैं तुम्हारी पूजा-इबादत करूँ तो मुझे नरक में ही जलाना; और यदि स्वर्ग की चाहना रखकर तुम्हें याद करूँ तो मुझे स्वर्ग से निकाल देना। किंतु यदि तुम्हें सिर्फ तुम्हारे लिए पूजूं तो तुम मुझे अपने शाश्वत सौंदर्य से वंचित न रखना।

रात्रि प्रार्थना करते गुजार देती, सोती न थी। उसकी एक प्रार्थना है—ओ मेरे प्रभु, तारे चमकते हैं, लोग सोये हैं, बादशाहों के दरवाजे बंद हैं और हर कोई अपने प्रेमी के साथ अकेले है; और मैं तुम्हारे साथ अकेले हूँ।

उसके साथ रहने वाली एक साधिका ने लिखा है कि राबिया पूरी रात प्रार्थना-ध्यान करते बिताती। जब सुबह होने को होती तो वह थोड़ी देर के लिए सो जाती। जब आकाश में लालिमा फैलती, वह नींद से जग जाती और अपने आप से कहती—क्या सोना, क्या जागना? जल्द ही तुम्हें उस नींद में सोना है जिससे जगाने वाला कोई न होगा। अंत की याद करो।

सूफी संतों में महिला एवं पुरुष विरक्त होते हैं, दोनों अलग-अलग रहते हैं। महिला की जगह पर महिलाएं रहती हैं, वही उस समाज की मुखिया होती हैं। पुरुषों का समाज अलग रहता है। उस जमाने में भी दोनों के

. O my Lord, the stars are shining and the eyes of men are closed, and kings have shut their doors and every lover is alone with his beloved, and here am I alone with Thee. (Pg.27)

लिए अलग व्यवस्था थी पर राबिया ने अलग रहना स्वीकार किया था। उसके साथ दो साधिकाओं की चर्चा है जो अंत तक उसकी सेवा करती रहीं। एक, बसरा की ही रहने वाली मरियम जो स्वयं साधनामय जीवन बतायी। एक बार सूफी संत आपस में एकत्रित होकर चर्चा करते थे कि उसी सभा में ही मरियम चल बसी। उसने कभी किसी से कुछ नहीं चाहा। दूसरी थी—आबिदा-बिन-सुहावल। वह राबिया की मृत्यु के समय उसके साथ ही थी।

अंतिम दिन

राबिया लगभग वर्ष की पकी उम्रवाली हो गयी थी। शरीर दुर्बल हो गया था यद्यपि मस्तिष्क तरोताजा व स्वस्थ था। अंतिम समय तक वह लोगों को आध्यात्मिक निर्देश करती रही। उसकी सभा में पुरुष व महिला दोनों ही आते। उसका प्रभाव दोनों वर्गों में समान रूप से था।

संतों को मृत्यु का कोई भय नहीं, अपितु यह प्रसन्नता का विषय है। राबिया के लिए तो यह मानो अपने पिता से मिलने जाने का उत्सवपूर्ण दिन था। उसकी मृत्यु की कफनी हमेशा तैयार रहती थी। जब उसका अंतिम समय आया तब उसने अपनी सहयोगी आबिदा को बुलाकर कहा—ओ आबिदा, मेरे जाने के बारे में किसी को सूचित करने की जरूरत नहीं। तुम यह कफन मुझे ओढ़ा देना।

उसकी मृत्यु के बारे में फारसी के एक लेखक ने लिखा है—अंतिम समय में लोग उसे घेरे हुए थे। राबिया ने उन सबको वहां से हटने को कहा—उठो और बाहर जाओ। उन सबके बाहर चले जाने पर फाटक बंद कर दिया गया। पीछे जब फाटक खोला गया तो उसकी मृत देह पड़ी थी। लोगों ने उसके शरीर को धोया, फातिहा पढ़ा और मृत देह को कब्र में दफना दिया गया। सन् ई. में उसकी मृत्यु हुई और बसरा शहर में जहां वह जन्मी-पली-बढ़ी-जिंदगी गुजारी, वहीं दफना दी गयी।

. Death is a bridge whereby the lover is joined to the beloved.

उसकी मृत्यु पर आयोजित शोक सभा में भीड़ ने कहा—राबिया के जीवन में परमात्मा के प्रति प्रेम ही उसका धन था। परमात्मा से भी उसने कुछ चाहा नहीं कि मुझे यह दो; दूसरे मनुष्यों से मांगना तो दूर की बात। राबिया कहती थी कि पूरा जागा हुआ मन वही है जो ईश्वर को छोड़ और किसी चीज पर चले ही नहीं। एक फकीर ने कहा—मैं उसका मेहमान था। रातभर उससे अध्यात्म के प्रश्न पूछता रहा, उससे चर्चा करता रहा। मेरे मन में एक बार भी यह विचार तक न आया कि मैं एक स्त्री से बात कर रहा हूँ।

चमत्कार

सामी परंपरा में संतों को चमत्कारी माना जाता है। चमत्कार उनकी सिद्धि की निशानी है। जितना पहुंचा हुआ संत, उतना अधिक चमत्कार उसके जीवन में। चमत्कार या करामात दिखाना संतों से जोड़ दिया जाता है। ईसाइयत में तो बिना चमत्कार के संत ही नहीं मानते।

सूफी संत चमत्कार का खंडन करते हैं पर उनके ही नाम से चमत्कार चल पड़े हैं। एक फकीर ने कहा है—पानी पर चलना, हवा में उड़ना, पृथ्वी की परिक्रमा करना, और स्वर्ग में जाना-आना—ये एक छलावा मात्र है। किसी ने फकीर अबू-याजिद-बिस्तामी से कहा—हमने सुना है कि आप हवा में उड़ सकते हैं। बिस्तामी ने कहा—इसमें कौन-सी आश्चर्यजनक बात हो जायेगी? एक चिड़िया जो मुर्दा खाती है, वह हवा में उड़ती है। हम फकीरों के पास और दूसरे महत्त्वपूर्ण काम भी हैं।

राबिया चमत्कारों की चर्चा से भी बचती थी किंतु उसके जीवनकाल में ही उसके नाम से अनेक चमत्कार चल पड़े। यद्यपि वह उनका खंडन करती थी। जुल्फा नाम की एक युवती ने राबिया से पूछा, आप लोगों से मिलने से अपने को बचाती हैं। ऐसा क्यों? लोग दूर से मिलने आते हैं पर आप मिलती नहीं। राबिया ने कहा—ये सभी स्वार्थवश आते हैं, इच्छापूर्ति के लोभ में आते हैं मेरे पास। कई बार मुझे भय होता है कि मेरे मरने पर यही लोग मेरे बारे में ऊंची-ऊंची काल्पनिक

बातें करेंगे कि मैं ऐसा करती थी या कहती थी। अभी मैं जीवित हूँ और लोग अभी ही मेरे बारे में कहते हैं कि जहां मैं प्रार्थना करती हूँ उस जमीन में नीचे धन गड़ा है। लोग तो यह भी कहते हैं कि मैं बिना आग जलाये ही भोजन बनाती हूँ। जुल्फा ने कहा, हां, मैंने भी सुना है कि आपको भोजन-पानी घर पर ही उपलब्ध हो जाता है। राबिया ने कहा—बेटी, अगर ऐसी चीज मुझे मिल जाये तो मैं उसको हाथ न लगाऊँ; छू भी नहीं सकती। सच तो यह है कि मैं चीजें बाजार से खरीदती हूँ और खाने के लिए अन्न खेत में मेहनत कर उगाती हूँ। कई बार तो फसल चौपट हो जाती है और मैं भूखी ही रह जाती हूँ।

जाको जाना उत घरा, सो क्यूं जोड़े मित।

जैसे पर घर पाहुना, रहे उठाए चित्त

जिसको उस घर जाना हो वह यहां मित्र क्यों बनाएगा? जैसे मेहमान दूसरे के घर में आता है कुछ दिनों के लिए, किंतु उसका मन अपने घर में ही लगा रहता है। राबिया का पूरा जीवन सद्गुरु कबीर की इस साखी की व्याख्या है। उसे इस दुनिया का कुछ भी बांध न पाया। धन, लोभ, लालच, भय, मान-बड़ाई, रिश्ते-नाते, सबसे मुक्त होकर जी। राबिया बहुत मजबूत चरित्र की थी। उसे कुछ भी डिगा न पाया। अपनी गरीबी की उसने ऐसे रक्षा की जैसे धनी अपने धन की करता है। राबिया ने संपूर्ण स्त्रीजाति को गौरवान्वित किया। संतों का मार्ग वे चाहे जिस मत के हों, त्याग-वैराग्य, अनासक्ति एवं दुनियावी प्रपंचों से दूर रहने का है। राबिया इस कसौटी पर खरी उतरी।

राबिया के जीवन से जुड़ी कुछ घटनाएं

. वसंत ऋतु थी। चारों तरफ खुशनुमा माहौल था। राबिया अपने कक्ष के भीतर प्रार्थना और ध्यान में लीन। बाहर से उसे कुछ लेना-देना नहीं। उसकी साथी आबिदा ने उसे बाहर से पुकारा—ओ राबिया, बाहर आओ और देखो, सब कुछ कितना सुंदर है? राबिया ने कक्ष से ही जवाब दिया—तुम ही भीतर आओ। बाहर कौन-सा आनंद है? अपने भीतर झांको, उसी में आनंद है।

. हसन एक फकीर था। वह राबिया का मेहमान हुआ। राबिया कुरान की जो प्रति पढ़ती थी उसे हसन देख रहा था। उसने देखा एक जगह एक पंक्ति में निशान लगा है और वह पंक्ति काट दी गयी है। हसन चकित रह गया—कुरान की पंक्ति को किसने काट दिया? यह तो कुफ्र है। राबिया ने कहा—हां, मैंने काटा है। उसमें लिखा था—पापी से घृणा करो। राबिया ने कहा, जब हृदय में घृणा ही नहीं रही, जब सबके लिए प्रेम है तब घृणा कैसे किसी से हो सकती है। मुझे इस कथन में दोष जान पड़ा, इसी से काट दिया है।

. राबिया अपने घर से दूर बैठी थी, वह जंगल था और जंगल के तमाम पशु-पक्षी बिना किसी डर के वहां विचरण कर रहे थे। राबिया शांत बैठी थी। तभी हसन फकीर वहां पहुंचा। उसे आया देखकर पशु-पक्षी वहां से दूर हट गये। हसन ने पूछा—आखिर क्या बात हुई? मेरे आने से ये सब भाग गए। अभी तक तो तुम्हारे चारों तरफ खुशी से नाचते थे। राबिया ने पूछा—आज तुमने भोजन में क्या खाया था? हसन ने कहा—मांस खाया हूँ। राबिया ने कहा—तभी तो ये पशु-पक्षी दूर भाग गये। हिंसा करने वाले से सभी भयभीत होते हैं।

. एक दोपहरी राबिया को लोगों ने घर से बाहर एक हाथ में जलती हुई मशाल और दूसरे हाथ में पानी से भरा घड़ा लेकर तेजी से जाते देखा। लोगों ने पूछा—ओ राबिया, यह तुम क्या करने जा रही हो? राबिया ने कहा—मैं इस पानी भरे घड़े से नरक की आग को बुझा दूंगी और इस मशाल से स्वर्ग को जला दूंगी। स्वर्ग की चाहना और नरक का भय ये दोनों ही अध्यात्म मार्ग में रुकावट हैं।

आध्यात्मिक चिंतन में राबिया का योगदान

राबिया से पहले सूफी फकीर भक्ति मार्ग में आशा (Hope) और भय (Fear) पर बड़ा जोर देते थे। स्वर्ग-सुखों की प्राप्ति की आशा और नरक से बचने का भय—इन दोनों पर बड़ी चर्चा थी। Hope and Fear are as two wings without which the work of the saint cannot make progress. अर्थात् आशा एवं भय पक्षी के

. वही, पृ. ।

दो पंखों के समान जरूरी हैं जिनके बिना संत आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकते। जैसे पक्षी दो पंखों के आधार पर आकाश में उड़ते हैं, और अगर एक भी पंख कमजोर हो जाये, तो पक्षी का उड़ना संभव नहीं, वैसे ही भक्ति मार्ग में आशा एवं भय जरूरी हैं। आशा है—मरने के बाद स्वर्ग प्राप्ति की कामना जहां सभी भोगों को भोगने की पूरी स्वतंत्रता है। भय है—नरक की आग में जलने का भय। भक्ति स्वर्ग (जन्नत) की प्राप्ति एवं नरक से बचने के लिए की जानी है, ऐसा माना जाता है।

राबिया ने स्वर्ग की आशा और नरक के भय को भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी अड़चन, बाधा, रुकावट माना। राबिया का कहना था कि स्वर्ग बाहर नहीं, हमारे अंदर है। स्थूल स्वर्ग कहीं नहीं है। भोगों की आशा-कामना रखकर भक्ति करना उचित नहीं। उसने दो बातों पर जोर दिया—

1. Paradise as a spiritual state.
2. Disinterested love to God.

. वही, पृ. 1

. स्वर्ग एक आध्यात्मिक स्थिति है, जो प्रेम-भक्ति में डूबे हैं उनके लिए स्थूल स्वर्ग सुख बेकार है।

. भक्ति बिना किसी कामना के होनी चाहिए। उसमें कुछ पाने की चाहना भक्ति को बिगाड़ना है।

राबिया भारत की मीरा जैसी है जो सिर्फ कृष्ण भक्ति की दीवानी थी, उसकी कोई अन्य चाह न थी। चार पुरुषार्थ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष में पांचवां पुरुषार्थ प्रेम (भक्ति) भी शामिल किया जा सकता है राबिया एवं मीरा की बदौलत।

आधार ग्रंथ

मारग्रेट स्मिथ लंदन की एक महिला थी। उसने में लंदन के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से राबिया पर शोध प्रबंध (पी-एच. डी.) लिखा था जो बाद में 'Rabia, The Mystic and her Fellow Saints in Islam' नाम से प्रकाशित हुआ और यह राबिया को जानने में मील का पत्थर साबित हुआ। मारग्रेट स्मिथ की पुस्तक के आधार पर इस आलेख को प्रस्तुत किया गया है। उनके प्रति साभार।

कहानी

अजनबी

लेखक—श्री विजय चित्तौरी

सायं बजे का समय था। मंदिर के सामने पुजारी पं. गिरिजा शास्त्री अपना आसन जमा चुके थे। सामने की दो कुर्सियों पर उनके खास दरबारी शर्मा जी और वर्मा जी भी विराजमान हो चुके थे। अभी दुआ सलाम और हालचाल का दौर चला ही था कि सामने से एक अजनबी युवा धड़धड़ाते हुए मोटर साइकिल से निकल गया। शास्त्री जी की निगाहों ने थोड़ी दूर तक अजनबी का पीछा किया। आगे जाकर बाइक सवार दायीं सड़क पर मुड़कर आंखों से ओझल हो गया। शास्त्री जी ने सामने बैठे शर्मा जी और वर्मा जी के सामने सवाल उछाला—

‘कौन है...?’

जवाब देने के बजाय कुछ ऐसा ही कौतूहल शर्मा जी ने भी व्यक्त किया—तीन-चार दिन से कालोनी में सुबह-शाम इसे आते-जाते मैं भी देख रहा हूं।

‘नया किरायेदार है...।’ वर्मा जी ने शास्त्री जी और शर्मा जी की शंका का समाधान किया।

शास्त्री जी का कौतूहल और भी बढ़ गया। पूछा—किरायेदार...? किसके घर में...?

‘गुप्ता जी ने अपने घर में रखा है।’ वर्मा जी बोले।

‘अरे, मुझे पता तक नहीं। खैर, लेकिन वर्मा जी, यह आदमी ठीक नहीं लग रहा है...।’

शर्मा जी और वर्मा जी प्रश्नसूचक निगाहों से शास्त्री जी को देखने लगे। शास्त्री जी ने अपनी बात स्पष्ट की—‘देख नहीं रहे हो, सर्र से निकल गया। अरे, यहां मंदिर है, चार भले आदमी बैठे हैं। दुआ-सलाम न सही, मंदिर और भगवान को तो सिर झुकाना चाहिए।’

‘मुसलमान तो नहीं है?’ शर्मा जी ने शंका प्रकट की।

‘उसकी दाढ़ी देखकर कह रहे हो क्या?’ वर्मा जी बोले।

‘हां, दाढ़ी तो कुछ वैसी ही रखे हैं।’

‘ऐसी दाढ़ी हिन्दू भी तो रखते हैं। फिर गुप्ता जी किसी मुसलमान को कमरा क्यों देंगे?’

शास्त्री जी—‘ठीक है, हिन्दू है, लेकिन इसमें हिन्दू जैसी सभ्यता नहीं है। कोई छोटजतिया लगता है।’

‘परसनालिटि तो छोटजतिया की नहीं है। देख नहीं रहे हो हट्टा-कट्टा शरीर और गोरा रंग।’ वर्मा जी ने जवाब दिया।

‘तो वर्णसंकर होगा...’ कहकर शास्त्री जी हंस पड़े।

शास्त्री जी की हंसी में शर्मा और वर्मा जी ने भी साथ दिया।

पं. गिरिजा शास्त्री कस्बे की शांतिपुरम् कालोनी के मंदिर के पुजारी हैं। मंदिर परिसर के ही एक कमरे में उनका निवास है। आयु ज्यादा नहीं है। तीस-बत्तीस के होंगे। उनके साथ उनकी पत्नी और सात-आठ साल का उनका बेटा रहता है।

शांतिपुरम् कालोनी ज्यादा पुरानी नहीं है। इसे बसे हुए मुश्किल से अभी दस-बारह साल ही हुए होंगे। सेठ जानकी शरण का पहले यहां आम का बड़ा बाग हुआ करता था। इधर जब काफी पेड़ गिर गये और जमीन की कीमत आसमान छूने लगी तो उन्होंने बाकी बचे पेड़ कटवा दिये। राजमार्ग से उस जमीन तक सड़क बनवाकर भूखण्ड की प्लानिंग करवा दिया। एक जीर्ण-शीर्ण कुआं और छोटा मंदिर पहले से था। सेठ जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। ऐसे में कुआं पटवाने का

सवाल ही नहीं था। इसका जीर्णोद्धार करवाया। मंदिर को विशाल और भव्य बनवा दिया और उसमें क्षेत्र के बुजुर्ग पुरोहित पं. नीलकंठ शास्त्री को पुजारी नियुक्त कर दिया। शास्त्री जी की मृत्यु के बाद अब उनके युवा पुत्र पं. गिरिजा शास्त्री मंदिर की देख-रेख कर रहे हैं।

शाम को चार-पांच बजे मंदिर के सामने बैठकर दरबार लगाना शास्त्री जी की दिनचर्या का हिस्सा है। कालोनी में चार-पांच रिटायर लोग उनके खास दरबारी हैं। उनमें शर्मा जी और वर्मा जी तो आ चुके हैं। सोमदेव त्रिपाठी उर्फ दारोगा जी, जटाशंकर मिश्र उर्फ जे.ई. साहब तथा लक्ष्मीनारायण मास्टर साहब आने वाले हैं।

‘अजनबी बाइकर छोटजतिया है या बड़जतिया’ शास्त्री जी और सामने बैठे दोनों दरबारियों में इसी विषय पर गंभीर चिन्तन शुरू हो गया। शास्त्री जी दार्शनिक अंदाज में बोले—देखो भाई, मैं तो भगवान के दरबार में रहता हूं। मैं ऊंच-नीच में भेद नहीं करता। हां, एक बात जरूर कहूंगा कि नीची जाति वालों में संस्कार तो नहीं ही होते। आप दूर न जाइये, अपनी इसी कालोनी में देखिये। यहां साल भर में कितने धार्मिक कार्यक्रम होते हैं। महीने में एक-दो धार्मिक अनुष्ठान हो ही जाते हैं। कालोनी में कथा-वार्ता, कीर्तन-भंडारा होता ही रहता है। छोटी जात वाले इन सबमें कहां भाग लेते हैं? यहां कालोनी में इनके कम-से-कम चार-पांच परिवार तो हैं ही। लेकिन ये लोग मंदिर में झांकते तक नहीं। मैं कहता हूं चढ़ावा न चढ़ावो, लेकिन दर्शन के लिए तो आओ...।’

शास्त्री का व्याख्यान चल ही रहा था कि कालोनी में झाड़ू-पोंछा करने वाली बसंती सामने से गुजरी। शास्त्री जी ने बसंती को रोका। बसंती निकट आयी तो उन्होंने पूछा—‘बसंती, गुप्ता जी के यहां जो नया किरायेदार आया है उसे जानती हो?’

‘हां, काहे नहीं...।’ बसंती ने जवाब दिया।

‘क्या काम करता है...?’

‘कौनउ कंपनी में काम करता है।’

‘किस जाति का है’,

‘पंडी जी, हमको ई तौ पता नहीं। वइसे आदमी काम-से-काम रखता है। कालोनी में कौनउ से कोई मतलब नहीं रखता।’

‘अकेला ही है या बाल बच्चे भी हैं उसके?’

‘नहीं, अकेला ही है। कौनउ काम है का पंडी जी। अबहीं अबहीं तो आवा है कमरे में।’

‘नहीं, कोई काम नहीं। ऐसेई पूछ रहा था। कालोनी में कौन आ रहा है, जा रहा है, यह हमें पता होना चाहिए न।’

‘हां पंडी जी, ई बात त ठीक ही है।’ कहती हुई बसंती चली गयी। उसी दरम्यान शास्त्री जी के अन्य दरबारी सोमदेव त्रिपाठी उर्फ दारोगा जी, जटाशंकर मिश्र उर्फ जे.ई. साहब तथा लक्ष्मी नारायण मास्टर भी एक एक करके आ गये और अपनी-अपनी कुर्सी संभाल लिए।

बसंती के जाते ही दारोगा जी ने पहला सवाल दागा—‘शास्त्री जी, काहे की तहकीतात हो रही है। मुझे भी तो बताइये।’

शास्त्री जी—कोई खास बात नहीं है दारोगा जी। गुप्ता जी के घर में कोई नया किरायेदार आया है। अभी-अभी निकला है इधर से। आप तो यहां का कायदा-कानून जानते हैं, मानते भी हैं। लेकिन वह पता नहीं कहां का अंकडू खां आया है, मंदिर के सामने सिर झुकाने को कौन कहे, गाड़ी की रफ्तार तक धीमी नहीं करता।’

दारोगा जी—‘वो अंकडू खां किसके घर का किरायेदार है?’

‘गुप्ता जी के घर का।’ शास्त्री जी ने जवाब दिया।

दारोगा जी तुरन्त एक्शन में आ गये। पुलिस की नौकरी करते हुए उन्होंने न जाने कितने अंकडूखांओं को ठीक किया था। उनके सामने यह तो कुछ नहीं था। उन्होंने शास्त्री जी से कहा—

‘आप भी शास्त्री जी छोटी-छोटी बात के लिए परेशान होते हैं। अरे, मुझे बताते, मैं काहे के लिए हूं आपके दरबार में। अब आप बताइये करना क्या है?’

दारोगा जी जल्दी से जल्दी समस्या की तह में पहुंचने को उतावले थे। उन्होंने बिना देरी किये जेब से मोबाइल निकाला, उसके कुछ बटन दबाये और मोबाइल कान में लगा लिया। उधर से आयी किसी आवाज के जवाब में दारोगा जी ने उसे आशीर्वाद दिया और बोले—‘अमे पांडे, तुम्हारे बगल गुप्ता जी के घर में कौनउ नया किरायेदार आया है का...हां हां वही, अभी नयी उमर का ही है...हां, का नाम बताया...हां-हां. नाम के आगे-पीछे कुछ लगाता तो हम पूछते ही काहे...हां हां. एस.सी. ही होगा...अच्छा हां, पता करके बताओ कि एस.सी. में किस जाति का है...ठीक है पांडे खुश रहो।;

दारोगा जी ने मोबाइल स्विच आफ करके जेब के हवाले किया और विजयी मुद्रा में सबको ऐसे देखा मानो उन्होंने कोई बहुत बड़े षड्यंत्र का पर्दाफास कर लिया हो।

बहुत देर से चुप बैठे लक्ष्मी नारायण मास्टर को इस चर्चा में आनन्द नहीं आ रहा था। उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त किया—दारोगा जी, कुछ और चर्चा छोड़ो, कहां उलझ गये एक फालतू मैटर में।

दारोगा जी को लक्ष्मी नारायण मास्टर की बात अच्छी नहीं लगी। थोड़ा अनमने मन से बोले—‘आप जैसे मास्टरों ने ही तो नई पीढ़ी को बरबाद कर दिया।’

‘और आप जैसे पुलिस वालों ने क्या किया...?’ लक्ष्मीनारायण मास्टर तैश में बोले।

दारोगा जी ठहरे भूतपूर्व दारोगा। रिटायरमेंट के बाद रस्सी जरूर जल गयी थी लेकिन उसकी ऐंठन तो है ही। उन्होंने लक्ष्मीनारायण मास्टर को और करारा जवाब दिया—‘हम पुलिस वाले न होते तो ये छोट जतिये बाभन-ठाकुरों के सिर पर मूतते।’

लक्ष्मीनारायण मास्टर भी जवाब देने में कहां पीछे रहने वाले थे। बोले—‘वह दिन दूर नहीं जब आप जैसी

सोच वाले बीच चौराहे पर इन्हीं छोटे जतियों द्वारा जुतियाये जायेंगे।’

दारोगा जी भड़क उठे, गुस्से में चेहरा लाल हो उठा। लगभग चिल्लाते हुए बोले—‘मास्टर साहब, मैं लिहाज कर रहा हूँ कि आप बिरादरी के आदमी हो और बुजुर्ग हो। दूसरा साला ऐसा कहकर देखे। अगर उसे जिन्दा न चबा गया तो मेरा नाम दारोगा सोमदेव त्रिपाठी नहीं।’

बात बढ़ती देख शास्त्री जी ने बीच बचाव किया—‘अरे शांत रहिए भाई! कहां आप लोग बात का बतंगड़ बनाने लगे...।’

दारोगा जी कुनमुनाएं—‘बाभन कुल में जनम लेकर कोई ऐसी भाषा बोले ये बरदाश्त के बाहर है शास्त्री जी...।’

बहरहाल अब माहौल बिगड़ गया था। दारोगा जी का भुनभुनाना जारी रहा और वे बिना देरी किये वहां से उठे और चले गये। चंद्र मिनटों बाद शर्मा जी भी उठे। बोले—‘शास्त्री जी, थोड़ा डॉ. रस्तोगी के यहां तक जाना है, मिसेज को दिखाना है। इस तरह एक एक कर सभी दरबारी उठ कर चले गये। दरबार खत्म हो गया।

हफ्ते भर बाद। स्थान वही। समय लगभग वही। वह अजनबी बाइकर फिर मंदिर के सामने उसी रफ्तार में आया। लेकिन आज उसकी बाइक यहां रुक गयी। कारण, मंदिर के सामने बीस-पच्चीस लोगों की भीड़ थी। उनमें ज्यादातर औरतें और बच्चे। शोकाकुल माहौल था। भीड़ के बीच बैठी एक औरत विलाप कर रही थी।

अजनबी ने हेलमेट का शीशा ऊपर किया। पास खड़े एक बुजुर्ग को इशारे से बुलाया। पूछा, ‘बाबा, क्या बात है। भीड़ क्यों लगी है?’

बुजुर्ग—‘बेटा, वो औरत जो रो रही है, शास्त्री जी की पत्नी है। इनके बेटे की हालत बहुत नाजुक है, डेंगू हुआ है, प्लेटलेट बहुत घट गया है। अगर कुछ घंटे के अन्दर खून न मिला तो बेटा हाथ से निकल जायेगा...।’

‘ओह...’ अजनबी के मुख से निकला। आगे उसने पूछा—‘खून की व्यवस्था नहीं हो पायी?’

बुजुर्ग—‘खून देने वाले तो हैं। लेकिन ओनकर खून मिलत नहीं बा।’

‘ओह! तो ब्लड ग्रुप का सवाल है।’ अजनबी के मुख से निकला।

विलाप करने वाली औरत के बगल एक और औरत बैठी थी। देखने में वह पढ़ी-लिखी सुशिक्षित लग रही थी। उसने अजनबी को बुजुर्ग से बात करते देखा तो कौतूहलवश उठकर अजनबी के पास आ गयी। संभवतः उसे लगा कि अजनबी अस्पताल से कोई नया समाचार लाया है। अजनबी ने महिला से पूछा—‘बहिन जी, किस ब्लड ग्रुप की जरूरत है?’

‘ए’ माइनस...। महिला बोली।

अजनबी—‘किसी ब्लड बैंक में नहीं मिला?’

‘नहीं भइया, वहां मिल जाता तो काहे की परेशानी थी।’

‘बच्चा किस अस्पताल में है?’

‘हेलट हास्पिटल के इमरजेंसी में है।’

अजनबी ने बाइक स्टैण्ड पर खड़ी की। हेलमेट उतार कर हैंडिल में लटकाया और विलाप करने वाली शास्त्री जी की पत्नी के सामने जाकर खड़ा हो गया। औरत ने आंसू पोंछते हुए चेहरा ऊपर उठाया। अजनबी बोला—‘बहिन! घबराने की जरूरत नहीं। मेरा ब्लड ग्रुप ‘ए’ माइनस ही है। मैं तुरन्त अस्पताल जा रहा हूँ। आपके बच्चे को कुछ नहीं होगा।’

औरत आश्चर्यचकित...! गौर से अजनबी को निहारा। समझ नहीं पा रही थी कि यह अजनबी, आदमी है या भगवान द्वारा भेजा गया कोई फरिश्ता। वह आंचल फैलाकर अजनबी के पांवों पर झुकी। अजनबी पीछे हट गया। उसने हेलमेट लगायी, बाइक मोड़ी और एक क्षण ठहर कर एक बार फिर भीड़ पर निगाह डाली। उसमें शास्त्री जी का कोई दरबारी नहीं था।

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

हम जिसे समस्या मानते हैं वह मन का भ्रम होता है। समय आने पर समस्या रह ही नहीं जाती। जिनको हम कुसंग समझते हैं, वे हमारे ऊपर हावी नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हें हम त्याग देते हैं। फिर कुछ स्थिर नहीं है। हम अपने को सबसे छोड़ाकर रखें तो हमें कौन पकड़ सकता है! हमने ही जड़-दृश्य को पकड़ा है और उसमें उलझकर उसकी वासना की रस्सी में अपने को बांधा है। यदि हम अपने को जड़-दृश्य से छोड़ाकर स्वयं में सिमित जायें, तो हमें कौन बांध सकता है? यदि मन कोई बात को लेकर उलझता है, तो वह निरा भ्रम होता है। मैं स्थिर हूँ, और मेरे सामने जो आता है, वह चंचल है। उसे हमें छोड़ देना चाहिए।

* * *

किसी की बुद्धि यदि खराब हो जायेगी, क्योंकि वह जानबूझकर गलत आदमी की संगत करता है, तो इसमें तुम्हारी क्या हानि हो जायेगी? तुम्हारा कौन है, जिसकी चिन्ता में तुम पड़े हो। तुम्हारा कर्तव्य है कि आश्रय लेने वालों को सही राय दो। यदि इसके बाद भी उनमें से कोई गलत आदमी की कुबुद्धि का आश्रय लेता है, तो वह स्वयं समझे अपना हानि-लाभ। तुम्हारा क्या जाता है? याद रखो, तुम असंग हो। तुम्हारा संबंध किसी से नहीं है। दूसरे के बह जाने से तुम्हारी स्वरूपस्थिति में हानि नहीं होगी। तुम्हारी हानि तुम्हारे अलावा कोई अन्य नहीं कर सकता। तुम अपने में दृढ़ स्थित रहो। तुम्हारा इसी में मंगल है।

* * *

मूर्ख वह है जो संसार में मोह करता है। अनुकूलता में सुख लगता है और प्रतिकूलता में दुख, ये दोनों क्षणिक हैं। अध्यात्म का सुख स्थिर है। वह क्या है?

वस्तुतः अपना स्वरूप शुद्ध चेतन है, देह-गेहादि से भिन्न है। जीवन में मिलने वाले प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों से आत्मा का कोई लाभ नहीं है, ऐसा जानकर जब सब तरफ से लगाव समाप्त हो जाता है, तब कोई दुख नहीं रहता। कोई दुख न रहना ही स्थिर सुख है, आध्यात्मिक सुख है। इसी को परमानन्द, निर्वाण-सुख, ब्राह्मी-सुख, स्वरूपस्थिति-सुख आदि कहा जाता है। अतएव जीवन की उच्चतम साधना है कहीं लगाव न रखना। हम जहां लगाव करते हैं वह व्यर्थ हो जाता है और लगाव का फल दुख होता है। “आवों न जावों, मरौं नहि जीयों, साहेब मेट लगारी।”

* * *

शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति सब औपाधिक हैं, छद्म हैं, नकली हैं, क्षणिक संबंध वाले हैं। तुम तो केवल हो, असंग हो, अद्वैत हो, निराधार हो। तुम्हारे में द्वैत-दूसरा कुछ नहीं है। क्षणिक संबंधित वस्तुएं दिखावा मात्र हैं। अतएव तुम सदैव केवल भाव में रहो। तुम्हारी कोई हानि नहीं कर सकता। तुम पर में, द्वैत में, दूसरे में फंस जाते हो, यह बहुत बड़ी भूल है। इस भूल को छोड़ दो, बस सब समय सुखी हो। परमानन्द है केवल-भाव में। क्या कोई संबंधित प्राणी-पदार्थ तुम्हारे हैं? कोई और कुछ तुम्हारा नहीं है।

* * *

दूसरे को दुख देने वाले, हत्या, चोरी और व्यभिचार करने वाले, षड्यंत्र रच कर दूसरों को नीचा दिखाने वाले अपने पाप-कर्म के कारण थोड़े दिनों में दयनीय दशा को प्राप्त होकर क्षीण हो जाते हैं। शरीर तो सबका क्षीण होता है, सबकी उपलब्धि माया बिखरती है; परन्तु पवित्र मन वाले को संताप नहीं होता। गंदा मन वाला सदैव संतापित रहता है। जीवन की सच्ची उपलब्धि है निर्मल मन और गहरी शांति। यह तभी प्राप्त होती है जब सब तरफ की प्रतिकूलताओं को निर्विकार भाव से सहकर आत्मलीनता की साधना में दृढ़ हुआ

जाता है। जो संसार की अहंता-ममता में पड़ता है वह संतापित रहकर जीता है और संताप में ही मर जाता है।

* * *

निर्विकल्प समाधि में विघ्न है निद्रा और तंद्रा। पूर्ण जाग्रत में ही निर्विकल्प समाधि बनती है। यह समाधि ही सच्ची समाधि है। शरीर और संसार छूटा-छुटाया है। इसके छूटने का भय विवेकवान को नहीं होता। उन्मादी मनुष्य मिलते हैं, साधक और साधु नामधारियों में भी उन्मादी मिलते हैं। इनसे सावधान रहना चाहिए। इनके मोह और वैर में न पड़े। अपना दुख काफी है, उसे झेल लो। नया दुख न बनाओ। सबसे निष्काम और निर्मान रहने से कोई समस्या नहीं उत्पन्न हो सकती। सबके पास अलग-अलग अहंकार है। तुम अपने अहंकार को मारो। दूसरे का अहंकार उसको दुख देगा। वह दुख न चाहेगा तो स्वयं उससे मुक्त होने के लिए उपाय करेगा। तुम अपना अहंकार मिटाओ।

* * *

आना-जाना, मिलना-बिछुड़ना, पाना-खोना, सत्कार-तिरस्कार, अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुख आदि झूठ तो नहीं हैं, किंतु क्षणिक हैं। ये बीत जाने पर झूठ हो जाते हैं। इसलिए इन बातों को लेकर मन को उद्वेगित तथा विकारी न बनावे। यह शारीरिक जीवन वर्तमान में झूठ तो नहीं है, परंतु आज-कल में झूठ होकर रह जायेगा। हमारे निकट के या दूर के लोग हमारे में श्रद्धा रखें या न रखें, हमारा क्या लाभ है या क्या हानि है? हमारी हानि है अशांत रहना और लाभ है शांत रहना। हमारे में श्रद्धा रखने वाले श्रद्धा छोड़ दें, विरोधी हो जायें, तो इसमें हमारी कोई हानि नहीं। जीवन में हानि कुछ रह ही नहीं गयी है। विदेह-भाव में जीना परम लाभ है और वह अपनी साधना की बात है जो स्ववश है।

* * *

तुम देह-धारण के बाद जबसे होशहवास में आये और जब से तुम्हें अपने जीवन में मिले हुए प्राणी-पदार्थों, स्थानों, भूमिकाओं, घटनाओं की याद है; उन

पर ध्यान दो, वे कहां हैं? आज से सत्तर वर्ष पूर्व की बातें आज खोजने पर भी नहीं मिलेंगी। तबके मनुष्य मिलना कठिन है, तबके राग-द्वेष, अनुकूल-प्रतिकूल, प्यारे-अनसुहाते का मिलना असंभव है। याद रखो, जिन्हें तुम आज बहुत निकट पाते हो, जो तुम्हारे चित से नहीं उतरते हैं, वे चाहे प्रिय हों या अप्रिय; थोड़े दिनों में वे सब आकाश-कुसुम की तरह लुप्त हो जायेंगे। इसलिए सारा संबंध अंततः खरगोश के सींग के समान झूठ होकर रह जाता है। अतएव तुम सब समय स्थिर, शांत और गंभीर रहो। मौन सबसे अच्छा है। शांत, शांत, शांत।

* * *

देखकर, सुनकर, सूंघकर, छूकर और स्वाद लेकर क्या फायदा होगा? केवल देह-निर्वाह के लिए ये सब करो, विलास के लिए नहीं। पांचों विषय कहो या संसार, एक बात है। इसकी वासना से सर्वथा मुक्त होना ही मोक्ष है, शांति है, आत्यंतिक सुख है, परमानंद है और अनपायिनी आनंद है। केवल दुःख-निवृत्ति चाहिए। सारे दुखों से छूट जाना कल्याण है। दुखों का समुच्चय है संसार-वासना, विषय-मोह, देहाभिमान। इनके पूर्ण नष्ट हो जाने पर हर्ष-अमर्ष नहीं रह जाते। निकट और दूर के लोगों द्वारा मिले हुए सत्कार और तिरस्कार को निर्विकार भाव से सहो।

* * *

सारा संबंध क्षणिक होने से अगले क्षण असत हो जाता है; इसलिए संबंध में प्रभावित होकर मोह, काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, तिरस्कार-कर्म, अनुदारता, विषमता, कटुवचन, अशिष्टता आदि के अधीन न हो। सब समय जड़-दृश्य से अपने को निकाले रखना साधना की सावधानी है। जीवनपर्यंत मानसिक प्रसन्नता में जीना, क्लेशरहित होकर जीना, परमानंद में जीना जीवन की सार्थकता है। छूटने वाले संसार में क्या हर्ष-शोक! जिस संसार का आज-कल में सदैव के लिए ओझल हो जाना, विस्मरण हो जाना एवं छूट जाना पक्का है, उसके लिए कैसा मोह-शोक। अतएव साधक जड़दृश्य से उपराम होकर अत्यंत वैराग्यपूर्वक समाधि में जीये।

तनाव छोड़ें सुख से जीयें

लेखक—विवेकदास

आज लोगों की सबसे बड़ी समस्या है तनाव। पहले की अपेक्षा आज लोग अधिक साधन सम्पन्न हैं, उनके पास सुख-सुविधा के साधन अधिक हैं किन्तु फिर भी वे तनावग्रस्त होते जा रहे हैं और इस वजह से अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियों के शिकार होते जा रहे हैं। तनाव के रहते दिन की रोटी (भूख) और रात की नींद गायब होती जा रही है।

हमारे जीवन में % रोगों का मूल कारण तनाव है जिसे अंग्रेजी में टेंशन या डिप्रेशन कहा जाता है। इससे छोटे-बड़े, किशोर-युवा, स्त्री-पुरुष सब ग्रस्त हो रहे हैं। कैंसर और एड्स जैसी बीमारियों से तो कुछ लोग ही प्रभावित होते हैं; किन्तु इस तनाव रूपी रोग से तो बहुत अधिक लोग प्रभावित हैं। इस रोग की पीड़ा को वही समझता है जो इस रोग से गुजरा है या इससे ग्रस्त है। सावधान रहें। चाहे सिर दुख रहा हो, चाहे पेट, जरूर इसके मूल में किसी न किसी प्रकार का तनाव जुड़ा होगा।

आज की भाग-दौड़ भरी जिन्दगी, दूसरों से तुलना, अति महत्वाकांक्षा और भौतिक उपलब्धि की चाह से आदमी की जिन्दगी अस्त-व्यस्त होती जा रही है। मनुष्य के जीवन में अनेक विसंगतियाँ और अनियमितताएं पैदा हो रही हैं। और इसके चलते आदमी अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियों से ग्रस्त होता चला जा रहा है। आज विश्व में मनोरोग की समस्या बढ़ती जा रही है। हर तीसरे घर में तनाव और अवसाद ने अपनी जगह बना ली है।

हमारे दिन-रात की व्यवस्थाओं में अनेक ऐसी बातें होती हैं जो हमारे तनाव को बढ़ाती हैं। आजकल छोटी उम्र के बच्चों से लेकर बड़ी उम्र वाले लोग भी आत्महत्या करने लगे हैं। पहले तो लोगों के पास सम्पन्नता का अभाव था फिर भी आत्महत्या जैसी घटनाएं यदा-कदा ही होती थीं। किन्तु आजकल तो पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी घटनाओं के समाचार छपते ही रहते हैं। कुछ लोग आत्महत्या नहीं करते हैं किन्तु

तनाव की वजह से उनका जीवन दुखदायी और नरकमय बना रहता है और ऐसे लोगों के संग-साथ रहने वालों के लिए भी बड़ी मुसीबत होती है।

विश्व के कई चिकित्सकों ने मन और शरीर के रोगों पर काफी गहरा अनुसंधान किया है और एक बात साफ तौर पर सिद्ध हो गयी है कि भय, गम, चिन्ता, ईर्ष्या, बुरे विचार और इनसे पैदा हुई तरंगें हमारे शरीर में अनेक रोगों को जन्म देती हैं। वहीं स्वस्थ विचार, प्रसन्नता, निष्क्रियता आनन्द और इनसे पैदा हुई तरंगें हमारे शरीर को शक्ति प्रदान करती हैं और जीवन को निरोग और दीर्घायु बनाती हैं।

तनाव के प्रमुख कारण—

. चिन्ता—किसी सकारात्मक बिन्दु पर किया गया चिन्तन-मनन तो व्यक्ति को सकारात्मक परिणाम देता है। किन्तु चिन्ता उस चक्रव्यूह के समान है जिसमें हम प्रवेश करना तो जानते हैं किन्तु निकलना नहीं जानते। मनुष्यों को चिन्ता होती है हमारा जीवन आगे ठीक से चल पायेगा कि नहीं। लोग हमें धोखा तो नहीं दे देंगे। व्यापार बैठ तो नहीं जायेगा, नौकरी मिल पायेगी कि नहीं, जीवनसाथी ने धोखा दे दिया तो। बच्चे सेवा करेंगे कि नहीं, उपेक्षा तो नहीं कर देंगे। धन आदि कोई हड़प न ले। कोई हमें मार न दे। इस प्रकार अनेक तरह से चिन्ता होती है और एक बार चिन्ता का चक्र शुरू हो जाता है तब आदमी बिलकुल सामान्य बातों पर भी चिन्ता करने लगता है। जैसे कहीं ट्रेन पकड़ना हो तो सोचेंगे कि समय पर पहुंच पायेंगे कि नहीं, सीट मिल पायेगी की नहीं, अधिक भीड़ होगी तो क्या करेंगे। बच्चों को स्कूल से घर आने में थोड़ी देर हो गयी तो चिन्ता होती है कि ऐसी-वैसी बात तो नहीं हो गयी होगी। ऐसी कितने ही प्रकार की चिन्ताएं आदमी पाल लेता है और यही धीरे-धीरे तनाव का रूप लेता है। और आदमी शारीरिक तथा मानसिक रूप से रोगी होता जाता है।

एक व्यक्ति लड़की की शादी और बूढ़े पिता की अन्त्येष्टि को लेकर चिन्तित था। लड़की की शादी करना

है, पिताजी के मरने पर उनका क्रियाकर्म करना है, आखिर कैसे होगा, ये दोनों काम। इतना रुपया कहां से आयेगा? उसकी पत्नी उसकी मानसिक स्थिति को देख रही थी, समझाने का प्रयास करती किन्तु वह नहीं समझता था। एक दिन वह खाट पर पड़ गयी और रोने लगी—हाय! मैं तो अब मर ही जाऊंगी, इतना काम मुझसे कैसे होगा? पति ने सुना तो पूछा—क्या हो गया? तो उसने कहा—यह मत पूछो। मैं मर जाऊंगी। मैं इतना काम कैसे कर पाऊंगी? पति ने कहा—आखिर बताओ तो क्या बात है? पत्नी ने कहा—आज एक महात्मा आये थे उन्होंने मुझसे कहा कि बेटी! अभी तुम्हें इस दुनिया में साल और जीना है। मैं सोचती हूँ कि यदि मैं एक दिन में बर्तन मांजती हूँ और कपड़े धोती हूँ तो एक महीने में बर्तन तथा कपड़े हो जायेंगे और साल में लाखों बर्तन तथा लाखों कपड़े हो जायेंगे तो इतना सारा काम मैं कैसे कर पाऊंगी। मैं तो मर ही जाऊंगी। पति ने कहा—बेवकूफ, ये सब एक दिन में थोड़े करना है, साल में करना है फिर चिंता क्यों? पत्नी ने कहा—इसी प्रकार लड़की की शादी और पिता की अन्त्येष्टि क्या एक ही दिन में करना है, जो कि इतना चिंता करते हैं। पति को लगा बात तो सही है और उसकी चिन्ता दूर हो गयी।

इस प्रकार व्यर्थ की बातों को सोच-सोचकर आदमी चिंताग्रस्त होता जाता है और धीरे-धीरे तनाव (डिप्रेशन) का शिकार हो जाता है।

. **भय**—भय से एक ऐसी ग्रंथि का निर्माण होता है जिससे सिंह जैसी शक्ति रखने वाला आदमी गीदड़ से भी पराजित हो जाता है। महाभारत युद्ध में अर्जुन ने जब युद्धभूमि में अपने ही परिजनों को देखा तो भय से गांडीव रख दिया और कहने लगा कि केशव, मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, गांडीव पकड़ा नहीं जा रहा है, मुंह सूख रहा है। शरीर कांप रहा है, और तो और मैं खड़ा भी नहीं हो पा रहा हूँ। ये घबराहट और भय के ही लक्षण हैं।

भय की स्थिति में मुंह और गला सूख जाता है। आमाशय में रोग पैदा होने लगते हैं। भयग्रस्त आदमी सामने वाले का सामना करना तो दूर सही ढंग से किसी बात का जवाब भी नहीं दे पाता। जैसे छोटी-सी चिंगारी

घास की ढेरी को थोड़े ही समय में राख में तब्दील कर देती है, ऐसी ही स्थिति भयग्रस्त व्यक्ति की होती है।

मनुष्य को सबसे बड़ा भय होता है मृत्यु का। किसी ने फोन पर धमकी दी और रातभर नींद नहीं आयी। डर गये पता नहीं अब क्या होगा! तनाव में आ गये। चाहे भय किसी भी प्रकार का हो, चाहे किसी चीज का हो जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है।

. **क्रोध**—क्रोधी व्यक्ति बहुत जल्दी तनाव में आ जाता है और उसका तन-मन विचलित हो जाता है। कुछ लोग पटाखे की तरह होते हैं। बस एक तिल्ली लगायी कि पटाखा फूटा। आजकल लोगों में असहनशीलता आ गयी है। तनिक-सी बातों में क्रोध कर बैठते हैं। ट्राफिक में तनिक से किसी की गाड़ी किसी दूसरे से लग गयी आग बबूला हो गये। कुछ भी प्रतिकूल हुआ फट पड़ते हैं और अपना तन-मन असंतुलित कर बैठते हैं। जो दो कड़वे शब्दों को भी सहन नहीं कर सकता वह कभी अपने मन की शांति का मालिक नहीं बन सकता है। तथागत बुद्ध अपने को प्रताड़ित करने वालों को, अपमानित करने वालों को माफ कर देते हैं। महावीर स्वामी अपने कान में कील ठोकना सह लेते हैं। कृष्ण महाराज शिशुपाल की निन्यानबे गलतियों को सह लेते हैं तो क्या हम और आप किसी की दो-चार कड़वी बातों को सुनकर नहीं सह सकते। कुछ क्षण का क्रोध हमारे मन-मस्तिष्क को बहुत समय के लिए प्रभावित कर देता है और अवसाद तथा तनावग्रस्त बना देता है।

. **अति लोभ**—अति लोभ में पड़कर आदमी तनावग्रस्त हो जाता है। क्योंकि लोभ की कोई सीमा नहीं है और यह पूरा हो ही जाये जरूरी नहीं है। लोभी व्यक्ति हाय-हाय करके मरता है। न तो वह ठीक से खा पाता है और न ही ठीक से सो पाता है बल्कि और-और की चाहत ही उसके जीवन का मूलमंत्र बन जाती है और उसकी झोली कभी भरती नहीं है। हां, तनाव की गांठ जरूर बनती है और शारीरिक और मानसिक बीमारी बोनस में मिलती है।

. **अपनों से धोखा खाना**—अपने माने हुए लोगों द्वारा जब धोखा मिलता है तब भी तनाव की स्थिति निर्मित होती है। कई बार तो इस स्थिति को न

झेल पाने के कारण आदमी आत्महत्या तक कर लेता है। पति या पत्नी से धोखा, प्रेमी या प्रेमिका से धोखा, बिजनेस पार्टनर से धोखा, पुत्र या पुत्री से धोखा। ऐसी परिस्थिति आने पर आदमी सोच-सोच कर अपना मानसिक संतुलन खो देता है और तनावग्रस्त हो जाता है।

. **भूत-भविष्य का व्यर्थ का चिंतन**—बीते वर्ष के कलेण्डर को निकाल फेंकने वाला आदमी भूत के विचारों को नहीं हटा पाता है। जैसे किसी ने आपसे कुछ अशिष्टता की, किसी ने कुछ हानि कर दी अब उसे याद करके उलझते जाते हैं और तनाव बढ़ाते हैं। बहुत अधिक याद और चिंता तनाव पैदा करते हैं।

एक व्यक्ति ने अपने भाई को मारने का प्रयत्न किया। मार तो नहीं पाया किन्तु उसके मन में यह गांठ पड़ गयी कि मैंने ऐसा किया। और इस बात को लेकर वह तनाव में था। हालांकि इस बात को दूसरा कोई जानता नहीं था फिर भी बीस वर्ष बाद भी वह इस बात को लेकर परेशान था।

भविष्य के लिए लोग कल्पना बुनते रहते हैं कि हमारे साथ ऐसा ही हो, हमारा जीवनसाथी ऐसा मिले, पुत्र-परिवार ऐसा हो; हमारे पास इस प्रकार धन हो। ऐसी सुनहरी कल्पना बुनते-बुनते अचानक विपरीत सोच मन में आ जाती है हालांकि वह वास्तविकता नहीं है केवल मन की सोच है किन्तु इसको लेकर तनाव में आ जाते हैं।

इस प्रकार तनाव उत्पन्न होने के अनेक कारण होते हैं और आदमी समझ के अभाव में अपने अन्दर तनाव पाल लेता है और एक बार जब तनावग्रस्त हो जाता है तो फिर उसका जीवन बहुत ही कष्टपूर्ण हो जाता है। फिर वह मनोचिकित्सकों के पास दौड़ता है और एक बार इनके पास पहुंच गये फिर तो समय और शक्ति खर्च करने के पश्चात भी वह पहले वाली स्थिति नहीं आ पाती है और उन्हें एक रोगी की तरह जीवन जीना पड़ता है।

आयें कुछ उपाय सोचते हैं तनाव को दूर करने के लिए—

. **सकारात्मक सोच**—हमेशा अपनी सोच सकारात्मक रखें। भूत-भविष्य की व्यर्थ की सोच में न उलझें। भविष्य के लिए अपनी प्लानिंग तो करें, किन्तु

उस पर अपनी मान्यता न लगायें। भूत में जो कुछ भी आपसे अच्छा या बुरा हो गया है उसे ज्यादा सोचकर अपना समय और शक्ति न गंवायें। बल्कि जो अच्छा हुआ है उससे प्रेरणा लें और जो बुरा हुआ है इसे ध्यान न दें।

किसी भी चीज पर सोचें तो विधायक सोचें, अच्छा सोचें। सकारात्मक सोच का जादू ऐसा है कि आपको चुटकियों में ही तनावमुक्त कर सकता है। सबके लिए अच्छा सोचें, शुभ सोचें। नकारात्मकता को पीछे धकेलते रहें। कभी यदि नकारात्मक चिंतन आने लगे तो उससे तटस्थ हो जायें और उसकी जगह अच्छा सकारात्मक सोचें।

. **प्रसन्न रहें**—प्रसन्न रहना तनाव को दूर करने का अच्छा माध्यम है। प्रसन्न रहने के लिए आप बच्चों का सहारा ले सकते हैं। ये बच्चे, बीमारों के लिए दवा की तरह तनावग्रस्तों के लिए औषधि का काम करते हैं। उनके साथ खेलिये, बोलिये, हंसिये। कुछ समय के लिए भूल जाइये कि आप बड़े हैं। देखिये कुछ ही समय में आपका तनाव उड़ जायेगा और आप अच्छा महसूस करने लगेंगे। मुस्कराने से मन का मैल तो साफ होता ही है, शरीर की नाड़ियां भी खुलती हैं। इसलिए तो योग के माध्यम से भी हंसाने का प्रयास किया जाता है।

एक बीमार व्यक्ति डॉक्टर से दवा लेकर आया। वह एक बंदर पाल रखा था। वह जब दवाई को पिया तो बंदर देख रहा था। मालिक की नजर बचाकर उसने भी दवाई की ढक्कन खोली और दवाई पी ली।

दवाई कड़वी थी। अब वह बहुत मुंह बनाने लगा और उसे घुड़कने लगा, दांत किटकिटाने लगा। उसे देखकर मालिक को इतनी हंसी आयी कि वह घंटे भर हंसता रहा। कुछ समय बाद वह थर्मामीटर से बुखार नापा तो बुखार उतर चुका था।

इस प्रकार प्रसन्न रहकर, मुस्कराकर तनाव से मुक्त रहा जा सकता है। दिनभर में एक दो बार हंसी का कहकहा हो ही जाना चाहिए। इससे हमारी मानसिक स्थिति तो अच्छी होगी ही शारीरिक स्थिति भी अच्छी हो जायेगी।

. **आत्मविश्वास रखें**—जीवन में हर समस्या का आत्मविश्वास से निदान कर सकते हैं। मैदान में दो

खिलाड़ी उतरते हैं, एक हारता है एक जीतता है। कारण आत्मविश्वास ही है। इसलिए आत्मविश्वास रखें। जीवन की हर छोटी-छोटी समस्याओं का समाधान हो ही जायेगा।

. **व्यस्त रहें, मस्त रहें**—परिश्रमशील व्यक्ति कभी तनावग्रस्त नहीं होते हैं। यदि आपके घर में बड़ी से बड़ी घटना हो गयी है तो भी आप अपने इस सदमे से उबर सकते हैं यदि आपने अपने को श्रेष्ठ कर्म से जोड़ लिया है तो। उपेक्षित बड़े-बुजुर्ग भी बच्चों को खिलाकर या उनके लिए कुछ रचनात्मक कार्य करके अपने आप को तनावमुक्त कर सकते हैं। अपने आप को किसी कर्म में लगनपूर्वक जोड़ते हैं तो शीघ्र ही उस कार्य को पूर्ण कर लेते हैं और मानसिक तनाव से भी बच जाते हैं। कहा जाता है—“खाली दिमाग शैतान का घर” खाली और निठल्ले बैठे रहने से अनेक प्रकार के विचार आ घेरते हैं और आदमी उसी में उलझता जाता है। इसलिए व्यस्त रखकर अपने को मानसिक द्वन्द्वों से ऊपर रखा जा सकता है।

. **रिलेक्सेसन**—रिलेक्सेसन या कायोत्सर्ग प्रति दिन से मिनट करके तनाव से मुक्त हुआ जा सकता है। इसके लिए कोई एकान्त कमरा हो, जहां आपको कोई व्यवधान न पहुंचा सके। शांति से पहले लेट जायें फिर दो-चार लम्बे श्वास लेकर शरीर को ढीला छोड़ दें। किसी भी अंग में कोई तनाव न रहने पाये फिर हल्की मुस्कान के साथ प्रयोग आरंभ करें। अब पैर से लेकर सिर तक अपना ध्यान धीरे-धीरे करके ले जायें। पहले एक पैर के अंगूठे में अपना ध्यान ले जायें, फिर धीरे-धीरे अन्य उंगलियों पर, फिर पंजे पर, फिर धीरे-धीरे पिण्डली से होते हुए घुटने तक अपना ध्यान ले आयें। फिर इस भाग को मन ही मन संकेत दें रिलेक्स होने के लिए रिलेक्स, रिलेक्स, रिलेक्स। अब धीरे-धीरे जंघा से कमर तक, फिर दूसरे पैर में इसी क्रम में ध्यान ले जाकर रिलेक्स करें। इसी तरह पूरे अंग में अपना ध्यान ले जायें और रिलेक्स करें। अब जब आप पूरे शरीर में ध्यान ले जाकर रिलेक्स कर चुके हैं तो कुछ समय इसी प्रकार एकदम शांत मुरदे की तरह पड़े रहें, फिर धीरे से जैसे आप सभी अंगों में ध्यान ले जाकर रिलेक्स किये वैसे ही सभी अंगों में ध्यान ले जाकर पूरे शरीर को सुझाव दें

कि वे सजग हो जायें फिर हलके से शरीर को क्रिया देते हुए धीरे से उठ जायें। हां, यह ख्याल रखें कि इस विधि का प्रयोग करते समय आंखें बंद रहें। यह रिलेक्सेशन का अभ्यास कम से कम मिनट और अधिक से अधिक मिनट किया जा सकता है। आप देखेंगे किसी प्रकार का भी मानसिक या शारीरिक तनाव हो बहुत ही जल्दी कम होने लगेगा। इसे नियमित करके अधिक लाभ लिया जा सकता है। जिनको नींद न आने की समस्या है उनके लिए भी यह बहुत उपयोगी होगा। यदि आप खुद न कर पायें तो किसी मार्गदर्शक के निर्देशन में कर सकते हैं। वैसे इसे स्वयं भी किया जा सकता है।

. **योगासन एवं प्राणायाम**—योगासन और प्राणायाम के माध्यम से भी शरीर और मन को तनाव मुक्त किया जा सकता है। पहले कुछ योगासन खड़े होकर, बैठकर और लेटकर किया जा सकता है फिर पांच प्रकार के प्राणायाम कपालभाति, भस्त्रिका, अनुलोम-विलोम, भ्रामरी और उद्गीथ किया जाये तो बहुत जल्दी ही हम शारीरिक और मानसिक रूप से अच्छा अनुभव करेंगे। योगासन में सूर्य नमस्कार प्राणायाम के साथ करे तो भी शरीर और मन दोनों के लिए ही अच्छा होता है। योगासन और प्राणायाम किसी योग्य प्रशिक्षक के माध्यम से सीखकर किया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा।

इस प्रकार हम इन साधनों को अपनाकर तनावमुक्त प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकते हैं। याद रखें स्वस्थ रहकर ही मस्त रहा जा सकता है।

जो तू भक्ति करन को चाहत हो
निंदा से नहीं डरिहो जी
पाँच छड़ी कोई सिर पर मारे,
सहत बने तो सहियो जी
मूरख आगे ग्यान न कथियो,
मौनी होय के रहिहो जी
पर तिरिया से नेह न करिहो,
देखत दूर से डरिहो जी
यह संसार विषय के काँटा,
निरखि परखि पगु धरिहो जी
कहैं कबीर यह निर्गुण बानी,
महरम होय के बुझिहो जी

शंका समाधान

प्रश्न—धर्मेन्द्र कुमार, करछना, इलाहाबाद

. प्रश्न—सद्गुरु कबीर ने बीजक के ज्ञान चौंतीसा प्रकरण में कहा है—दसहूँ द्वारे तारी लावै। तब दयाल के दर्शन पावै। यह दसवां द्वार कहां है और वह दयालु कौन है, जिसका दर्शन होता है?

उत्तर—सद्गुरु कबीर अपनी बात प्रायः लक्षणा और व्यंजना में कहते हैं। उक्त पंक्ति में न तो दसवें द्वार पर समाधि लगाने की बात कही गयी है और न किसी दयालु ईश्वर के दर्शन करने की बात है। जैसे सद्गुरु कबीर ने अपनी वाणियों में अनेक जगह दस द्वार की बात कही है, जैसे—दस द्वारे का पिंजरा, दसहूँ द्वार नरक भरि बूड़े आदि। ये दस द्वार इस प्रकार हैं—दो आंख, दो कान, दो नाक, मुख, गुदा, उपस्थ एवं तालुमूल (ब्रह्मरंध्र, खोपड़ी का शिरोभाग)।

दसहूँ द्वारे तारी लावै का अर्थ दसवें द्वार पर समाधि लगाना नहीं है किंतु दसों इंद्रियों का संयम करना है। भावार्थ है जब साधक दसों इंद्रियों को संयमित कर तथा मन को अंतर्मुख कर समाधि लगाता है तब दयालु सद्गुरु उपदिष्ट आत्मदर्शन-आत्मसाक्षात्कार करता है। आत्मदर्शन-आत्मसाक्षात्कार का अर्थ अपने स्वरूप को आंखों द्वारा देखना नहीं है, क्योंकि अपना आत्मस्वरूप कोई भौतिक पदार्थ नहीं है जो आंखों द्वारा दिखाई पड़ता हो, किन्तु आंखों द्वारा दृश्यों को देखने वाला वही है। यहां देखना-पाना कुछ नहीं है, किन्तु सारे दृश्यों का अभाव होकर अपने आप शुद्ध चेतन सत्ता मात्र रह जाना है। देखना-पाना तो इंद्रिय-मन का व्यवहार है, किन्तु यहां तो दसों इंद्रियों को उनके विषयों से समेटकर मन को अंतर्मुख कर लिया गया है, तब वहां क्या देखना-पाना रह जायेगा।

इसी स्थिति के लिए कठोपनिषद् में कहा गया है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तमाहुः परमां गति

अर्थात् जब मन के सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियां अवतिष्ठित-संयमित हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टाहीन शांत हो जाती है तब उसे ही परम गति कहते हैं।

. प्रश्न—निज स्वरूप विवेक क्या है?

उत्तर—संसार में दो मूल तत्त्व हैं जड़ और चेतन। दोनों एक दूसरे से सर्वथा पृथक अनादि-अनंत हैं। जड़ तत्त्व असंख्य परमाणुयुक्त, विकारी, क्रियाशील एवं परिणामी तथा ज्ञान गुण रहित हैं। चेतन एकरस, अविकारी, अपरिणामी, स्वरूपतः निष्क्रिय, ज्ञान-गुणयुक्त है।

मैं जड़ तत्त्वों से सर्वथा पृथक, अंश-अंशी, कारण-कार्य, व्याप्य-व्यापक भावरहित, शुद्ध-बुद्ध, अविकारी ज्ञानस्वरूप चेतन हूँ। मुझे न बाहर से कुछ पाकर पूर्ण होना है और न किसी में मिलकर किन्तु मैं स्वरूपतः अपने आप में पूर्ण हूँ। निज स्वरूप की भूल तथा विषयों की आसक्ति-वासनावश मैं जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ हूँ। विवेक-वैराग्य-साधना द्वारा विषयों की वासना-आसक्ति को त्यागकर तथा स्वस्वरूप का निर्भ्रान्त बोध पाकर अपने स्वरूप में स्थित होकर मैं सदैव के लिए कृतार्थ हो सकता हूँ। यह बोध ही निज स्वरूप विवेक है।

प्रश्न—कु. अनीता, महासमुंद, छ. ग.

. प्रश्न—कुछ लोग कहते हैं कि गुरु का ध्यान करना चाहिए और कुछ लोग कहते हैं ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। दोनों में श्रेष्ठ कौन है?

उत्तर—प्रारंभिक साधना काल में साधक मन को किसी एक बिन्दु में ठहराने, एकाग्र करने के लिए अपनी पात्रता एवं रुचि के अनुसार कोई आलंबन लेता है। उन्हीं आलंबनों में एक आलंबन गुरु का ध्यान करना है। बोध-वैराग्यनिष्ठ संत ही गुरु हैं, जिनके द्वारा हमें स्व-पर, आत्म-अनात्म, बंध-मोक्ष का ज्ञान मिलता है और जीवन के परम लक्ष्य को पाने के लिए प्रेरणा मिलती है और साधना-पथ में आगे बढ़ने के लिए संबल-साहस मिलता है। गुरु के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा होती है और जिसके प्रति श्रद्धा-भक्ति होती है उसके स्मरण, चिंतन, ध्यान करने से मन में प्रसन्नता, सात्त्विक भावना आती है

और मन एकाग्र होता है। इसलिए साधकों के लिए गुरु का ध्यान करना कल्याणकारी है। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने कहा है—वीतरागविषयं वा चित्तम्। अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए वीतराग पुरुषों को चित्त का विषय बनाना चाहिए अर्थात् उनका ध्यान करना चाहिए।

प्रारंभिक साधना में मन को एकाग्र करने के लिए गुरु का ध्यान तो किया जा सकता है परंतु यह वास्तविक ध्यान नहीं है। वास्तविक ध्यान तो है मन का निर्विषय हो जाना—ध्यानं निर्विषयं मनः। निर्विषय होने का अर्थ है मन में कोई चिंतन, स्मरण, संकल्प न होना, मन का पूरी तरह से शांत हो जाना।

रही बात ईश्वर का ध्यान करने की, तो पहले यह समझना होगा कि ईश्वर क्या है, कैसा है, साकार है या निराकार। यदि ईश्वर साकार है तो वह शरीरधारी होगा। शरीर सबका मरणधर्मा होने से उसका शरीर भी समाप्त हो गया होगा, उससे हमारी मुलाकात न होने से उसका ध्यान कैसे करेंगे? यह कहने से काम नहीं चलेगा कि ईश्वर का शरीर चिन्मय होने से उसका नाश नहीं होता। शरीर किसी का चिन्मय नहीं होता। सबका शरीर पंच भौतिक होता है। हां, सभी शरीरों के भीतर जो चेतन विराजमान है वही चिन्मय, शुद्ध चेतन होता है। इसीलिए सभी प्राणी प्रत्यक्ष ईश्वर हैं और प्राणियों में बोध-वैराग्यनिष्ठ निर्मल जीवन संत-गुरु श्रेष्ठ होने से उनका ध्यान करना कल्याणकारी है।

यदि ईश्वर निर्गुण-निराकार है तो उसका कोई ध्यान कैसे करेगा। निर्गुण-निराकार ध्यान का विषय हो ही नहीं सकता। उसकी केवल कल्पना हो सकती है। कोई यह भावना कर सकता है कि मेरे चारों तरफ ईश्वर व्याप्त है। इस भावना में तदाकार होने से मन बाह्य प्रपंच-चंचलता छोड़कर एकाग्र-शांत हो जायेगा। परंतु यह साधक के मन की भावना होगी न कि ईश्वर का ध्यान।

ईश्वर की हम केवल भावना-कल्पना कर सकते हैं, किन्तु उसका ध्यान नहीं किया जा सकता। प्रारंभिक साधना में मन को एकाग्र करने के लिए गुरु का ध्यान

किया जा सकता है। जिस साधक की जैसी भावना होती है, जिसको वह इष्ट मानता है उसको चित्त का विषय बनाने से, उसमें मन को ठहराने से मन बाह्य चंचलता, स्मरण छोड़कर उसमें एकाग्र हो जाता है और यह एकाग्रता मन की प्रसन्नता का कारण तो होती ही है, ध्यान-साधना में आगे बढ़ने में सहायक भी होती है।

प्रश्न—विपिन भाई, नासिक, महाराष्ट्र

. प्रश्न—सद्गुरु कबीर ने अपनी वाणियों में 'खसम' शब्द का अनेक जगह प्रयोग किया है। इसका अर्थ क्या है?

उत्तर—सद्गुरु कबीर ने 'खसम' शब्द का प्रयोग मंडन और खंडन दोनों अर्थ में प्रयोग किया है। कबीर साहेब ने बीजक में खसम शब्द का प्रयोग पति, मालिक, ईश्वर, गुरु, शत्रु, आकाश के समान निर्मल आदि अनेक अर्थों में किया है।

खसम मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ स्वामी, मालिक तथा शत्रु दोनों होते हैं। सद्गुरु कबीर ने जहां कहा है—खसम छाँड़ि कस आपु बँधावा, खसम छाँड़ि दहुँ दिशि धावै, खसमहिं छाँड़ि विषय रंग राते, वहां खसम का अर्थ पति, मालिक ही है और उसका लक्षणा अर्थ है स्वस्वरूप, अपना आपा। क्योंकि सद्गुरु कबीर का प्राप्तव्य कोई अलग ईश्वर-मालिक नहीं है, जिसे प्राप्त कर जीव कृतार्थ हो जायेगा।

जहां कहा गया है—खसमहि छाँड़ि छिमा हो रहिये वहां खसम का अर्थ शत्रु है। और वह शत्रु कोई दूसरा नहीं अपने दोष ही हैं।

बीजक में जहां कहा गया है—खसम कही मिलि बात, सो अब खसम सही समुझावै, वहां खसम का अर्थ अर्थ भ्रमिक गुरु है। जो भक्तों-जिज्ञासुओं से मिलकर भ्रम-कल्पना की बात करते हैं तथा अपने भक्तों को इस ढंग से समझाते हैं मानो उन्होंने ईश्वर का साक्षात् दर्शन कर लिया है।

बीजक को पढ़कर जाना-समझा जा सकता है कि सद्गुरु कबीर ने खसम शब्द का कहां किस अर्थ में प्रयोग किया है।

—धर्मन्द्र दास

बीजक चिंतन

तुम्हारा लक्ष्य बाहर नहीं है

शब्द-

सावजन न होइ भाई सावजन न होई, वाकी माँसु भखै सब कोई
सावजन एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता
पेट फारि जो देखिये रे भाई, आहि करेज न आँता
ऐसी वाकी माँसु रे भाई, पल पल माँसु बिकाई
हाड़ गोड़ ले घूर पवारिनि, आगि धुवाँ नहिं खाई
शिर सींगी किछुवो नहिं वाके, पूँछ कहाँ वे पावै
सब पण्डित मिलि धन्धे परिया, कबिरा बनौरी गावै

शब्दार्थ—सावजन=साउज, वह जानवर जिसका शिकार किया जाये, लक्ष्य, ब्रह्म। अविगति=अविगत, अज्ञात। घूर=घूरा, कूड़े-कचरे का ढेर। पवारिनि=फेंक दिया। आगि धुँवा=ज्ञानाग्नि का चिह्न। धंधे=धंधा, गोरख-धंधा। कबिरा=साधारण मनुष्य। बनौरी=बनाये हुए गीत।

भावार्थ—हे भाई! वह कोई ऐसा शिकार-जानवर नहीं है जिसे तुम अपना लक्ष्य बनाकर जीवन में सफल हो सको, फिर भी सब लोग उसका मांस खाना चाहते हैं वह ऐसा सर्वप्रिय शिकार एवं लक्ष्य हो गया है जिसकी प्रसिद्धि पूरे संसार में हो गयी है, परन्तु उसका पता-लता कोई नहीं जानता हे भाई! यदि उसका पेट फाड़कर देखा जाये तो न उसमें कलेजा है और न अंतर्दी। अर्थात् वह कुछ नहीं है परन्तु हे भाई! उसके मांस की मिठास की ऐसी प्रसिद्धि हो गयी है, कि सभी धार्मिक दुकानों पर उसका मांस क्षण-क्षण बिक रहा है विवेकवान तो उसके हाड़-गोड़ सहित उसे कचरे के ढेर में फेंक देते हैं। आग और धुआँ भी वह नहीं सह पाता है उसके सिर तथा सींग कुछ भी नहीं है तब उसमें लोग पूँछ कहाँ पायेंगे परन्तु सभी पंडित मिलकर उसको खोजने के गोरखधंधे में पड़े हैं और साधारण मनुष्य उसके सम्बन्ध में पंडितों के बनाये गीत गाते हैं

व्याख्या—मनुष्य की अपनी आत्मा से अलग ब्रह्म की खोज पर यह पूरा शब्द व्यंग्य है। हम भूलवश

अपना लक्ष्य, अपना शिकार एक ब्रह्म को मानते हैं और उसे अपनी चेतना से, अपनी आत्मा से अलग समझते हैं। हम उसी पर अपना मन लगाना चाहते हैं। साहेब कहते हैं कि हे भाई! तुम्हारी अपनी आत्मा से तुम्हारा लक्ष्य अलग नहीं है। परन्तु उस शिकार का मांस सब खाना चाहते हैं। अर्थात् सब अपनी आत्मा से अलग ब्रह्म खोजते हैं।

“सावजन एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता।” ब्रह्म हमारा शिकार है, लक्ष्य है, यह बात सारी दुनिया में गूँजती है। इस पर बड़ी-बड़ी चर्चाएं होती हैं, भाषण होते हैं, पोथियाँ लिखी जाती हैं, परन्तु उसका पता-लता किसी को नहीं है। तथागत बुद्ध ने कहा है कि एक आदमी बांस-पर-बांस जोड़ता हुआ लम्बी सीढ़ी बना रहा था। उससे पूछा गया कि इसे कहाँ लगाओगे? उसने कहा, यह तो नहीं जानता हूँ, परन्तु बना रहा हूँ। हमारी दशा यही है। हम अपने आत्मारूपी परमात्मा को छोड़कर बाहर परमात्मा खोज रहे हैं, परन्तु उसका पता किसी को नहीं है। “अविगति वाकी बाता” उसकी बात सबको अज्ञात है।

“पेट फारि जो देखिये रे भाई, आहि करेज न आँता।” यदि हम उस पर विचार करते हैं, तो हमारे हाथ में कुछ नहीं लगता है। यदि हम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से कुछ पाते हैं तो वे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पाँच विषय हैं। और यदि मन से कुछ रूप खड़ा करते हैं तो वह मन का संकल्प-विकल्प मात्र है। इन्द्रिय और मन का व्यापार समाप्त हो जाने पर हमारा बाहर से सम्बन्ध ही कट जाता है, तब रह जाती है स्वचेतन सत्ता मात्र। अतएव स्वचेतन सत्ता एवं अपनी आत्मा को छोड़कर ब्रह्म या ईश्वर खोजना आकाश नापने के समान मिथ्या प्रयास सिद्ध होता है।

“ऐसी वाकी माँसु रे भाई, पल-पल माँसु बिकाई।” परन्तु आत्मभिन्न ब्रह्म की चर्चा बहुत है। जिस धार्मिक दुकान पर देखो वहीं उसके दर्शन कराने का झांसा दिया जाता है। ईश्वर के नाम पर धर्म का माल खूब बिकता है। ईश्वर-दर्शन कराने की बात कहो तो तुम्हें लोग घेर लेंगे। तुम्हारी दुकान खूब चलेगी।

“हाड़-गोड़ ले घूर पवारिनि, आगि धुवाँ नहिं खाई।” विवेकवान इस कल्पना को रद्दी की टोकरी में

डाल देते हैं। मेरी अपनी चेतना, मेरी अपनी आत्मा विद्यमान ही है जो पूर्णकाम, आप्तकाम, अकाम, निष्काम एवं प्राप्तकाम है। इस स्वयं प्रत्यक्ष ब्रह्म को छोड़कर बाहर ब्रह्म खोजने के पचड़े में क्यों पड़ें! जिसको परख-विवेक नहीं होगा वही बाहर ब्रह्म खोजेगा। जिसे परख है, विवेक है, वह तो अपने चेतनस्वरूप में ही स्थित होकर कृतार्थ हो जाता है। स्थिति अपने स्वरूप में ही हो सकती है। बाहरी वस्तु में व्यक्ति की स्थिति नहीं होती। धुआं जहां भी हो वहां आग का होना सिद्ध होता है। अतः धुआं आग का चिह्न है। यहां ज्ञान आग है, उसका लक्षण मानो धुआं है। ज्ञान का थोड़ा लक्षण भी यह कल्पित सावज नहीं सह पाता। अर्थात् थोड़ा भी विचार करने पर अपनी आत्मा से अलग परमात्मा नहीं ठहरता।

“शिर सींगी किछुवो नहिं वाके, पूँछ कहाँ वे पावै।” उस सावज के न सिर है न सींग है, फिर उसमें पूँछ कहाँ मिलेगी? तैत्तिरीय उपनिषद् में आनंदमय कोश का वर्णन करते हुए बताया गया है—“उसका प्रिय ही सिर है, मोद दाहिना पंख या भाग है, प्रमोद बायां पंख या भाग है, आनन्द शरीर का आत्मा (मध्यभाग) है और ब्रह्म पूँछ एवं आधार है।” साहेब कहते हैं कि यह सारा वर्णन भौतिक है। उसमें न सिर है न सींग है, फिर ब्रह्म-पूँछ कहाँ से मिलेगी।

“सब पण्डित मिलि धन्धे परिया, कबिरा बनौरी गावै।” सभी पण्डित मिलकर उसको सिद्ध करने तथा खोजने के गोरखधन्धे में पड़े हैं और साधारण लोग उनकी कही हुई बातों को दोहरा रहे हैं। पण्डित लोग तो भगवान को एक धन्धा ही बना रखे हैं—“बनिज एक सबन मिलि ठाना। नेम धर्म संयम भगवाना।” वे अपनी आत्मा से अलग बाहर ईश्वर का रूप खड़ा करके ही अपना धंधा चला सकते हैं। पंडित पहले ईश्वर का रूप खड़ा करता है, तब वह स्वयं साधारण मनुष्य तथा ईश्वर के बीच में मध्यस्थ बनता है। वह अपनी पूजा-प्रार्थना के बल पर ईश्वर को खुशकर

. तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः।
आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा। (तैत्तिरीय उपनिषद् /)
. रमैनी ।

साधारण जनता को भोग और मोक्ष देने का दावा करता है। आत्मा ही परमात्मा है यदि यह बोध हो जाये तो पण्डित का धन्धा बन्द हो जायेगा। इसलिए पण्डित नहीं चाहता कि लोगों को स्वरूपज्ञान एवं आत्मज्ञान हो। वह बाहर ईश्वर की कल्पना खड़ाकर लोगों को अपने मायाजाल में उलझाये रखना चाहता है। कबीर साहेब कहते हैं “राम नाम निजु जानि के, छाड़ि देहु बस्तु खोटी।” राम ऐसा नाम तुम्हारा ही है, यह जानकर खोटी वस्तु—बाहर राम खोजना छोड़ दो।

इस पूरे शब्द का भाव यही है कि हमारा शिकार, हमारा लक्ष्य, हमारा उद्देश्य हमारी अपनी आत्मा से अलग नहीं है। अलग खोजना केवल पण्डितों का गोरखधन्धा है या धन्धेबाजी है। यहां पण्डित का अर्थ केवल ब्राह्मण-पंडित नहीं, किन्तु संसार के सभी पुरोहितों की बात है।

. रमैनी साखी ।

पानी बीच बतासा साधो,
तन का यही तमासा है।
मुट्टी बाँधे आया बंदा,
हाथ पसारे जाता है।
ना कुछ लाया न ले जायगा,
नाहक क्यों पछिताता है।
जोरू कौन खसम है किसका,
कैसा तेरा नाता है।
पड़ा बेहोस होस कर बंदे,
बिषय लहर में माता है।
ज्यों ज्यों बंदे तेरी पलक परत है,
त्यों त्यों दिन नगिचाता है।
नेकी बदी तेरे संग चलेगी,
और सब झूठी बाता है।
प्राण तुम्हारे पाहुन बंदे,
क्यों रिस किये कुहाता है।
पलटू दास बंदगी चूके,
बंदा ठोकर खाता है।

डॉ. राममिलन की कविताएँ

मरा अपना इंसा, धर्म क्यों मरा न

मेरी रूह महफ़िल को अब, अलविदा कह,
यहाँ तो गज़ब का तमाशा छिड़ा है,
कभी था जो हमराह मेरा वो भाई,
वही मजहबी बनकर मुझसे भिड़ा है

धर्म नाम का हाथ में लेकर खंजर,
मेरा कल्ल करने पर कैसे आमादा,
वो खूनी-दरिन्दा बना आज कैसे,
था करता कभी साथ जीने का वादा

जिस्म का लहू धर्म, सदियों से पीता,
मगर पेट उसका, क्यों अब भी भरा ना,
धर्म युद्ध कितने धरा पर हुए पर,
मरा अपना इंसा, धर्म क्यों मरा ना

धर्म तुझको मेरी, यही बददुआ है,
कभी सुख-चैन से कहीं रह न पाये,
जिस्म को जलाता, धर्म तू जमीं पर,
जमीं पर मेरी रूह, तुझको जलाये

भस्म कर दे तुझको मेरी रूह, ऐसे,
जमीं पर निशा तेरा अब रह न पाये,
मिटें तेरी नस्लें, सभी पंथ, मजहब,
जमीं पर सदा जिसने इंसा मिटाये

बता दे धर्म उनको अपना ठिकाना

मेरी रूह, रुखसत हो अब इस जहाँ से,
नहीं कोई अपना यहाँ सब पराये,
तुझे तो धर्म से, भला क्या है मतलब,
धर्म गुण तो, जड़ का, जो हल्ला मचाये

लगाते फिरे धर्म की देखो बाँगे,
धर्म के मगर, पास कब हैं ये आये,
बदल करके हुलिया जिस्म का ये अपने,
धर्म नाम को अपने सर पे उठाये

बने धर्म रक्षक ये, जो फिर रहे हैं,
धर्म का मरम कब भला जान पाये,
बता दे धर्म उनको, अपना ठिकाना,
जो अब तक जमीं पर हैं, सबको लड़ाये

चिता को मेरी आग इन्सा लगाना

मैं इन्सान जब भी, मरूँ इस जमीं पर,
मेरी मौत का न, तमाशा बनाना,
न हिन्दू, न मुस्लिम या फिर मजहबी,
जनाजे को मेरे न, कन्धा लगाना

बड़े फख से कहना, काफ़िर मरा एक,
मरा नास्तिक, तुम भी हल्ला मचाना,
तुम्हारी नजर में तो, बेदीन था मैं,
समझदार तुम सब, तुम्हें क्या बताना

मेरी लाश को तुम कफ़न से न ढँकना,
जमींदोज करना या, इसको जलाना,
कफ़न की जो कीमत, उसे पास रखना,
न मरने पे तुम, मेरे आँसू बहाना

हों बेदीन जो, नास्तिक या फिर काफ़िर,
है उनको ही बस मेरी, मैथ्यत में आना,
मरा आज फिर एक, इंसा है, क्योंकि,
चिता को मेरी आग, इन्सा लगाना

रखना हिफ़ाजत से, इन आँसुओं को,
मेरी कब्र पर, बैठकर मुस्कुराना,
न लड़ना कभी, कोई मजहब की खातिर,
धर्म नाम पे, अब न घर को जलाना

धर्म तेरा रक्षक तो इन्सान ही था,
मगर तूने सदियों से इंसा मिटाये,
कभी साथ रहते थे, मेरे वो भाई
धर्म तेरे कारण हुए अब पराये

रहम कर धर्म, कुछ तो इन्सान पर अब,
बचेंगे जो, वो तेरी रक्षा करेंगे,
बता दे धर्म आखिर क्या है बला तू,
तेरे नाम पर वरना, हम सब मरेंगे

धर्म तू तो जन्मा है, इंसा के कारण,
इबारत तेरी, कौन, आखिर लिखेगा,
अगर मर गये सारे इंसा जमीं पर,
धर्म तू स्वतः इस जमीं से मिटेगा

कर्मयोगी कबीर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

(जनवरी अंक से आगे)

कबीर अद्भुत पारखी एवं नीर-क्षीर विवेक से संपन्न था। उसकी विवेक शक्ति इतनी प्रबल थी कि वह सत्य-असत्य को परखने में जरा भी चूक नहीं करता था। तिस पर अन्याय के प्रति तीव्र विद्रोह। सत्य के प्रति उसकी पक्षधरता एवं निष्पक्षता देख अनेक लोग उससे जुड़ते चले गये थे। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसके भीतर इन गुणों का विकास और अधिक तेजी से हुआ था। दस वर्ष की अवस्था में तो उनकी एक मंडली ही तैयार हो गई थी। इनमें रैदास एवं सेना कबीर के पक्के साथी बन गये थे। ये दोनों भी समाज में व्याप्त अन्याय एवं शोषण को लेकर अत्यधिक आक्रोशित थे।

कपड़ा बुनता कबीर जब मस्ती में डूबकर गाता था तो ये दोनों भी इकतारा और खंजड़ी लेकर साथ-साथ झूमने लगते थे। कबीर की तरह ये दोनों भी अपना पुस्तैनी धंधा जूता बनाने एवं बाल काटने का काम प्रतिदिन किया करते थे और जैसे ही अवसर मिलता था तीनों निकल पड़ते काशी के गली-कूचों में। फिर धीरे-धीरे लोग उनके करीब एकत्र हो जाते थे और भजन-सत्संग की बैठक शुरू हो जाती थी। वैसे भी मुक्तिधाम के रूप में विख्यात काशी में हर रोज कहीं-न-कहीं धार्मिक कर्मकाण्ड चलता ही रहता था। इसके अतिरिक्त इस वक्त काशी नगरी में विभिन्न मत-पंथों के बीच अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए भयंकर घमासान मचा हुआ था।

हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म के बीच प्रतिद्वन्द्विता तो थी ही, हिन्दू धर्म में ही शैव, शाक्त और वैष्णव आपस में लड़ने-मरने पर उतारू थे। नाथपंथी योगी हाट-बाजार में अपनी योग-शक्ति का प्रदर्शन करके लोगों से धन तथा भोग की वस्तुएं प्राप्त करने में लगे हुए थे। इसके लिए वे अपने को त्रिकालदर्शी एवं गुप्त-प्रकट का ज्ञाता

सिद्ध करके आम जनता को आश्चर्यचकित किया करते थे। इनका मोक्ष अत्यंत दुर्लभ था। जिसे कठिन योग क्रिया के बाद ही प्राप्त किया जा सकता था।

इसके ठीक विपरीत पौराणिक धर्मानुयायी प्रभु-भक्ति की महिमा के गुणगान में व्यस्त थे। इस भक्ति मार्ग की यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि यहां अंधश्रद्धा मुस्कराती हुई पांव पसारे बैठी थी। यदि किसी ने गलती से राम का नाम ले लिया तो उसे और कुछ करने की जरूरत नहीं है। राम का नाम राम से बड़ा हो गया था। तीर्थों में जाकर देवी-देवताओं के दर्शन कर लेने से ही मुक्ति निश्चित थी। शिव के त्रिशूल में बसी काशी में मरने वाले का तो मोक्ष धरा-धराया था। इसलिए सशरीर स्वर्ग जाने के मोह में पड़कर श्रद्धालु काशी-करवट लिया करते थे। मणिकर्णिका घाट में निरंतर धधकती चिता, अपनी सद्गति का इंतजार करती तथा गंगा में प्रवाहित जली, अधजली लाशें इस बात की गवाही देती थीं कि लोगों में मुक्ति-धाम काशी और गंगा मैया के प्रति श्रद्धा अक्षुण्ण है। कबीर इन दृश्यों को नित्य देखता और इस असार संसार में अपनी अज्ञानता के कारण जीवों को जीवन-मृत्यु के चक्र में पिसता देख भीतर ही भीतर रोता था।

चलती चाकी देखकर, दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय

यहां हर रोज बाहर से अनेक श्रद्धालु भक्त गंगा-स्नान के लिए आते और भगवान विश्वनाथ की पूजा-अर्चना करके लौट जाते थे, इस विश्वास के साथ कि उनके इस जन्म के सारे पाप धुल गये। पंडे-पुजारियों ने यह महिमा फैला रखी थी कि एक बार गंगा में डुबकी लगाने वालों के करोड़ों जन्मों के पाप कट जाते हैं तथा काशी में मरने वाला सीधा स्वर्ग जाता है। इसीलिए

आस-पास के अधिकांश बूढ़े अशक्त तथा जीवन से निराश हो चुके रोगी व्यक्ति अंतिम समय में काशी दर्शन के लिए पहुंचते थे ताकि मृत्यु होते ही वे सीधे स्वर्ग जा सकें।

इस विचारधारा का पोषण करने वाले पंडे-पुजारियों एवं पंडितों से सारी काशी भरी हुई थी। साधु-संतों के कई आश्रम तथा मठ भी थे। भक्ति मार्ग के इन सगुण उपासकों में स्वामी रामानंद की ख्याति काशी के बाहर भी फैली हुई थी। स्वामी रामानंद वर्णाश्रम व्यवस्था एवं अवतारवाद के प्रबल समर्थक थे। उनकी दृष्टि में इस संसार से मुक्ति केवल भगवान राम की उपासना-भक्ति से ही संभव थी। भगवत्कृपा मिलने पर ही जीव उस परम पिता परमेश्वर को प्राप्त कर सकता था। इसीलिए वे विधिवत रोज प्रातः गंगा-स्नान के पश्चात भगवान की मूर्ति को पूजा-पाठ करके भोग लगाया करते थे।

दस वर्ष की अवस्था में कबीर ने जिस तरह से काशी में हलचल मचा दिया था, वह अत्यंत अविश्वसनीय था। इतनी छोटी-सी उम्र में ऐसी तार्किक बुद्धि कि सब लोग अवाक् देखते रह जाते। जैसी तीव्र बुद्धि वैसी ही निर्भीक कथनी और करनी। उम्र से आगे भाग रहे कबीर के विषय में अपने शिष्यों से सुनकर वृद्धावस्था में पहुंच चुके स्वामी रामानंद बेहद अचंभित थे। आखिर इस बालक में इतनी बुद्धि कहां से आ गई? स्वामी जी के आश्रम में कबीर को लेकर न चाहते हुए भी रोज चर्चा होती थी और लोग उसके कारनामे सुनकर दांतों तले उंगली दबाने को मजबूर हो जाते थे।

उस दिन स्वामी रामानंद भोजन के बाद दोपहर में विश्राम करके उठे ही थे कि उनके एक शिष्य ने आकर बताया था, “स्वामी जी, आपके विद्वान शिष्य सुरसुरानंद कबीर के सामने निरुत्तर हो गये और उन्हें कोई जवाब नहीं दे पाये।”

स्वामी रामानंद के चेहरे पर आश्चर्यमिश्रित जिज्ञासा उभर आयी। यह समाचार उनके लिए अत्यंत हैरत अंगेज था। उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लेकर

छोड़ते हुए कहा, “विस्तार से कहो, यह सब कब और कैसे हुआ?”

आज्ञा पाकर शिष्य ने कहा, “आज सबेरे गंगा घाट पर एक पेड़ की छाया में कबीर का सत्संग चल रहा था। वे लोगों के सामने वर्णव्यवस्था, अवतारवाद एवं मूर्तिपूजा का खंडन कर रहे थे। कहते थे कि ब्राह्मण को विराट पुरुष के मुख से पैदा हुआ बताना एवं उसकी श्रेष्ठता की दुहाई देना सरासर धोखा है। जाति से कोई बड़ा नहीं होता। गीता-भागवत के रचयिता पंडित वेदव्यास धीवरी के पुत्र थे। श्री राम के गुरु वसिष्ठ उर्वशी अप्सरा से पैदा हुए थे तथा नारद दासी-पुत्र थे। शूद्रों को भी वेद-शास्त्र पढ़ने का अधिकार है। ब्राह्मण-वैश्य सब केवल ऊपरी आडंबर हैं। इंसान सब एक हैं। जो गुणों से श्रेष्ठ है वही पंडित है।

उस वक्त वहां सुरसुरानंद और भावानंद भी खड़े सुन रहे थे। जब उनसे रहा नहीं गया तो उन्होंने कबीर की बातों का तत्काल प्रतिवाद किया कि कबीर झूठ कहते हैं। वर्णव्यवस्था का जन्म वेद से हुआ है और वेद स्वतः प्रमाण है। बस फिर क्या था, कबीर ने तुरंत एक कवित्त जड़ दिया—

वेद कितेब छाँड़ि देहु पाँड़े, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनो हो पाँड़े, ई सब तुम्हरो करमा
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा

उनका कवित्त सुनकर सब दंग रह गये। फिर जब सुरसुरानंद ने वेद और सृष्टि को सर्वशक्तिमान ईश्वर की रचना कहा तो कबीर ने दूसरा कवित्त सुना दिया, ‘तहिया होते पवन नहिं पानी, तहिया सृष्टि कौन उत्पानी।’ जवाब में सुरसुरानंद कुछ नहीं बोल पाये। इसके बाद देवी-देवताओं की शक्ति एवं पूजा-भक्ति की सार्थकता पर उन्होंने व्यंग्य किया था—

माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जीव देइया जी।
जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी

अब सुरसुरानंद भला क्या जवाब देते? उनकी दुर्गति होते देख भावानंद बीच में कूद पड़े। उन्होंने

कहा, 'कबीर, आप बड़े ज्ञानी हैं, पर यह तो बताइये कि आपके गुरु कौन हैं? निगुरा के ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं होता।'

फिर दोनों वहां से चले आये थे। स्वामी जी हमारी सारी मान्यताओं को कबीर ने कुछ ही समय में ध्वस्त कर दिया था। मैं तो उनकी वाक्पटुता और अकाट्य तर्क देख विमोहित रह गया।”

सारी बातें सुन स्वामी रामानंद सोच में डूब गये थे। उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि उनके विद्वान शिष्य सुरसुरानंद कबीर के सामने निरुत्तर हो गये। उस कबीर के सामने जिसे आज तक किसी ने शिक्षा-दीक्षा नहीं दी। और खेलने-कूदने की उम्र में कबीर बड़े-बड़े पंडितों को लोहे के चने चबवा रहे हैं। निःसंदेह कबीर किसी पूर्वजन्म के दिव्य संस्कारी जान पड़ते हैं, जो साधना के चरमोत्कर्ष पर पहुंचकर पैदा हुए हैं। बिना गुरु के ही बाल्यावस्था में धर्म के रहस्यों का ज्ञान हो जाना सचमुच आश्चर्यजनक है। इसके अतिरिक्त इतनी छोटी अवस्था में उनका भाषा-ज्ञान किसी चमत्कार से कम नहीं है। उनकी बुद्धि बाल्यावस्था से छलांग लगाकर प्रौढ़ावस्था में जा पहुंची है।

स्वामी रामानंद वैष्णव संत होते हुए भी वर्णव्यवस्था के समर्थक थे। कबीर की वाणियों से वे भीतर ही भीतर उद्वेलित हो गये थे। कई बार उनका मन होता था कि कबीर को बुलाकर सामने देखें और सुनें किन्तु उनके भीतर बैठा ब्राह्मण उन्हें ऐसा करने से रोकता था। एक तो नीच जाति, उस पर विधर्मी मलेच्छ। किसी की नजर न पड़े इसलिए ब्राह्मणमुहूर्त में ही गंगा-स्नान कर आते थे। और अब स्वयं कबीर से मिलने को उतावले हो रहे थे। जीवन भर के त्याग-तपस्या का क्या होगा? कई दिनों तक उहापोह की स्थिति में रहने के बाद उन्होंने कबीर को बुलाने का निर्णय लिया था। अब उनके शिष्यों के चौंकने की बारी थी। जब उन्होंने आश्रम के नियम-कायदे एवं उनके उसूलों की याद दिलाई तो स्वामी जी बोले थे, “बालक भगवान का रूप होता है। उसे बुला लाओ।”

कबीर तक समाचार पहुंचा तो वे सहर्ष स्वामी जी से मिलने के लिए तैयार हो गये। उन्हें तो हमेशा विद्वान पंडितों की तलाश रहती थी। वे स्वयं भी स्वामी जी के दर्शन के इच्छुक थे किन्तु उनकी जातिगत कट्टरता देख अब तक तटस्थ बने रहे। कबीर के प्रति स्वामी रामानंद की यह उदारता सारी काशी में चर्चा का विषय बन गई थी।

कबीर जब आश्रम पहुंचे, स्वामी रामानंद के कक्ष में दरवाजा पर हमेशा टंगा रहने वाला पर्दा हटा दिया गया था। स्वामी जी के सम्मुख पहुंचते ही कबीर 'साहेब बंदगी' कहकर हाथ जोड़े खड़े हो गये। स्वामी जी ने प्रत्युत्तर में अपने हाथ जोड़कर कबीर का अभिवादन स्वीकार किया था, “आओ कबीर, बैठो, आपकी बहुत चर्चा सुनी है, मन नहीं माना तो बुलवा लिया।”

“आपके दर्शन की अभिलाषा थी, आज पूरी हो गई स्वामी जी। इस सहृदयता के लिए आपका आभारी हूं।” कबीर मुस्कुरा रहे थे।

फिर उन दोनों के मध्य धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिदृश्य पर बहुत देर तक चर्चा होती रही। स्वामी रामानंद कबीर की तीक्ष्ण बुद्धि एवं वाक्चातुर्य देख विस्मित थे। उन्हें उसी दिन आभास हो गया था कि कबीर वह तूफान है जिसकी तीव्रता के सामने पाखंड एवं वर्णव्यवस्था का ढहना निश्चित है। कबीर उनकी मान्यता के विपरीत सोच रखते थे फिर भी स्वामी जी कबीर के प्रति अनुरक्त हो उठे। कबीर की प्रतिभा देख वे अपने आश्रम में उन्हें बेरोक-टोक प्रवेश की आज्ञा प्रदान करने हेतु बाध्य हो गये थे। उनके आश्रम में वर्षों से चला आ रहा नियम कबीर की वजह से खंडित हो गया था।

अब जब मन होता कबीर स्वामी जी के पास ज्ञान चर्चा के लिए पहुंच जाते। वे जब भी जाते स्वामी रामानंद के सामने ऐसा प्रश्न खड़े करते कि जवाब देने के लिए उन्हें सोचना पड़ता था। बार-बार कबीर सनातन धर्म, वर्णव्यवस्था और उनके आराध्य भगवान राम को लेकर सवाल किया करते और अपने तर्कों से उन्हें

निरुत्तर कर देते। फिर विवश हो स्वामी जी बचाव की मुद्रा में खड़े नजर आते और उन्हें कहना पड़ता था, “कबीर, सब आपकी तरह दिव्य संस्कारी नहीं होते। उन्हें तो सामान्य बुद्धि के धरातल पर ही समझाना होगा। लोग निराकार निर्गुण की बात नहीं समझ सकते।”

कबीर जानते थे, अपनी मान्यता के बंधन में जकड़े स्वामी जी के भीतर अपने विश्वास की दीवार को ढहते हुए देखने की हिम्मत नहीं है। उनकी दृष्टि में भगवान राम की भक्ति ही मनुष्य के उद्धार का एकमात्र रास्ता है। कबीर बहुत भांति स्वामी जी के सामने इस सत्य को

उद्घाटित करते रहे कि प्राणि मात्र के हृदय में निवास करने वाला ही राम है। वह कहीं बाहर नहीं है। किन्तु स्वामी जी दशरथ-पुत्र राम के रस में ही माते रहे।

आगे चलकर एक दिन जब कबीर स्वामी रामानंद के आश्रम से लौटकर कबीर चौरा पहुंचे, तो रैदास ने उनसे विनोद किया था, “लगता है कबीर स्वामी जी से उनकी सुमरनी लेकर ही रहेंगे।”

तब कबीर बोले थे, “नहीं रैदास, ऐसी बात नहीं है। रामानंद राम रस माते, कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके।”

क्या मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है?

लेखक—नारायण दास

इस धरती पर अनेक प्राणी हैं, पशु, पक्षी, कीड़े आदि। सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य को माना जाता है। परंतु क्या सचमुच मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है? आप लोगों को मैं कल्पनालोक की सैर कराता हूं।

एक बार मनुष्य जानवरों के पास गया और उनसे पूछा कि हम मनुष्य तुम पशु, पक्षी, कीड़े आदि प्राणियों से श्रेष्ठ हैं। तुम्हारा क्या विचार है? मनुष्य की इस बात को सुनकर पशु बड़े जोर से हंसे और बोले—मनुष्य! तुम अपने आपको स्वयं श्रेष्ठ मानते हो। तुम्हारे श्रेष्ठ होने का प्रमाण किसने दिया? बिना प्रमाण के कोई भी बात मान्य नहीं होती है। विद्यार्थी पढ़ते हैं, उन्हें उनका मास्टर डिग्री देता है। लोग डॉक्टर पढ़ते हैं, उन्हें कोई दूसरा डॉक्टर डिग्री देता है। तुम स्वयं अपनी डिग्री बना लिये हो। हम सब में से किसी ने तुम्हें श्रेष्ठ होने की डिग्री नहीं दी है।

अरे मनुष्य! तुम ऐसा स्वार्थी प्राणी हो कि दूसरे का थोड़ा भी ख्याल नहीं रखते हो। अपने स्वार्थ के लिए हमारे साथ बहुत अन्याय करते हो। तुम अपने स्वार्थ के

लिए हमारी स्वतंत्रता को परतन्त्रता में बदल दिये हो। हमारी सारी आशाओं को मिट्टी में मिला दिये हो। तुम हमें जबर्दस्ती अपने वश में कर लिये हो। गुस्सा आने पर हमारी पिटाई भी करते हो। हमारे दुख-दर्द को समझे बिना अपने मन का करते रहते हो। हमसे मनचाहा और हमारी औकात से भी अधिक काम लेते हो और अपने जीभ स्वाद के लिए हमें काटकर भी खा जाते हो। क्या यही तुम्हारा श्रेष्ठ होने की पहचान है। हम जीवन भर तुम्हारी सेवा करते हैं। हमारा दूध और गोबर तुम्हारा ही है। मरने के बाद मांस, चाम तथा हड्डियां भी तुम्हारी ही हैं। भला, तुम्हारा शरीर हम सब के लिए क्या काम आता है?

तुम्हारी श्रेष्ठता पर हमें बार-बार हंसी आती है। इस धरती पर चोरी करने वाला, बेईमानी करने वाला, डाका डालने वाला, घूस लेने वाला, छल करने वाला, हिंसा करने वाला, व्यभिचार तथा बलात्कार करने वाला, दूसरे पर कुदृष्टि डालने वाला, नाना प्रकार के दुर्व्यसन करने वाला प्राणी तुम मनुष्य ही हो। इतना ही क्या पृथ्वी पर,

जल में तथा आकाश में स्वच्छन्द विचरने वाले प्राणियों को तुम मनुष्यों से ही खतरा है। पूरी दुनिया को राख में मिलाने का दुस्साहस तुम मनुष्यों ने ही किया है। आज किसी भी प्राणी को किसी से खतरा है तो तुम मनुष्यों से ही। अन्य किसी भी प्राणी से किसी भी प्राणी को खतरा नहीं है। फिर भी तुम्हें श्रेष्ठ होने का अहंकार है। तुम्हारे चरित्र को देखकर तो शैतान-राक्षस भी दांतों तले उंगली दबाकर शरमाता होगा कि सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाने वाले मनुष्य का ऐसा चरित्र! भूल जाओ श्रेष्ठ होने के अहंकार को।

उपरोक्त बातों से आपको बहुत उदासी हुई होगी। आप यही सोचते होंगे कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह पूर्ण सत्य नहीं है। एकांगी सत्य है। मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी कैसे और क्यों है, इसकी कसौटी सद्गुरु कबीर साहेब जी करते हैं—‘मानुष तेरा गुण बड़ा।’ मनुष्य गुण के नाते बड़ा है, शरीर के नाते नहीं। मनुष्य क्या है? यह शरीर का नाम है खानियों के अनुसार। दो पैर वाले बुद्धिजीवी प्राणी को मनुष्य कहा जाता है, चार पैर वाले को जानवर कहा जाता है। पंख वाले प्राणी को पक्षी कहा जाता है। मनुष्य, शरीर का नाम है। मनुष्य शरीर पाने मात्र से श्रेष्ठ नहीं हो जाता है। मनुष्य श्रेष्ठ है तो गुण के नाते।

श्रेष्ठ वही मनुष्य है जिसका विचार श्रेष्ठ हो, रहनी श्रेष्ठ हो। सत्य, अहिंसा, शील, क्षमा, विवेक, विचार आदि सद्गुणों के आचरण से जीवन श्रेष्ठ हो जाता है और इनके न रहने से जीवन नरक हो जाता है। इनके बिना तो जीवन वैसे लगता है जैसे कागज के फूल। जो देखने में सुन्दर परंतु उसमें कोई सार तथा सुगंध नहीं। किसी कवि ने कहा है—

*इन्सान की खुशबू रहती है
इन्सान बदलते रहते हैं।
दरबार लगा रहता है,
सुलतान बदलते रहते हैं*

इस संसार में इंसान की ही सदैव खुशबू रहती है। उनका ही सदैव आदर्श लिया जाता है।

संसार में करीब साढ़े सात अरब मनुष्य हैं। उनमें से कितने लोग हैं जिनका आदर्श ले सकें। मात्र मुट्ठी भर या कहें कि अंगुलियों में गिनने मात्र। बाकी लोग तो कमाते-खाते हैं। उन्हें औरों की क्या चिंता। उन्हें औरों की क्या अपनी ही चिंता नहीं है। अपने जीवन को ही नहीं संवार पाते हैं। अपने असली स्वरूप को ही बिगाड़ लेते हैं। महापुरुष सदैव खुशबू बिखेरते रहते हैं। उनका आदर्श लोग शिरोधार्य करते हैं। वे सब महापुरुष अपने जीवन को समझे, अपने जीवन को सजाये-संवारे और प्राणियों के हित के लिए काम किये। मनुष्यों के अन्दर ज्ञान का प्रकाश जलाये। वे सब महापुरुष अपने लिए नहीं किन्तु मानो औरों के लिए ही संसार में आये। महापुरुष फलदार पेड़ की तरह होते हैं। पेड़ फल स्वयं न खाकर दूसरों को देते हैं। महापुरुष सदैव दूसरों के हित के लिए अपना सर्वस्व लुटा देते हैं।

किसी भी क्षेत्र में देखा जाये तो इंसान की ही शोभा है। इंसान के नाते ही सारी व्यवस्था सुचारू रूप से चलती है। जहां इंसानियत घटी वहां सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। किसी कवि ने बहुत अच्छा कहा है—

*आसमान की शोभा शून्य से नहीं सितारों से है।
देश की शोभा गद्दारों से नहीं वफादारों से है।
मनुष्य की शोभा उसके रूप-रंग से नहीं।
उसके ऊंचे चरित्र और सद्विचारों से है*

महात्मा गांधी से एक बार एक विदेशी पत्रकार ने पूछा कि गांधी जी, आप कोई खास पढ़े-लिखे नहीं हैं, और आपके भाषण में भी कोई कलाबाजी नहीं है। फिर भी क्या कारण है कि आपके पीछे देश और विदेश की जनता लट्टू हो जाती है? महात्मा गांधी ने कहा— मुझमें क्या विशेषता है, मैं यह तो नहीं जानता, परंतु इतना जानता हूं कि जिसे मैं गलत समझता हूं उसे त्यागने के लिए कमर कस लेता हूं। और जिसे मैं अच्छा समझता हूं उसे ग्रहण करने के लिए कमर कस लेता है।

यह कम बड़ी बात नहीं है। जिसे गलत समझे उसे त्याग दे और जिसे अच्छा समझे उसे ग्रहण कर ले।

आदमी ऐसा कर कहां पाता है? आदमी तो जान-बूझकर गलत करता है और जानबूझकर अच्छा नहीं करता है। दुर्योधन ने कहा है—मैं धर्म को जानता हूँ परन्तु उसे आचरण नहीं कर पाता हूँ और अधर्म को भी जानता हूँ परन्तु उसे त्याग नहीं पाता हूँ। आदमी जानता है कि क्रोध करना, कटु बोलना, छल-कपट करना, चुगली करना, चोरी करना, हिंसा करना, बेईमानी करना, घूस लेना गलत है, फिर भी जानबूझकर करता है। कितने लोगों को वही-वही काम करते-करते उसकी आदत बन जाती है। फिर आदमी आदत से लाचार हो जाता है। ऐसी मजबूत आदत कि उसे छोड़ने में मानो उसके प्राण ही निकल जायेंगे। मनुष्य की असली सम्पत्ति उसका चरित्र ही है। अच्छे चरित्र के बिना आदमी का जीवन पशु से भी बदतर हो जाता है। चाणक्य ने कहा है—

येषां न विद्या न तपो न दानं,
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति

जिसके पास विद्या नहीं, तप नहीं, दानशीलता नहीं, शील, गुण एवं धर्म नहीं वह इस मृत्युलोक में पृथ्वी पर भार ही है। वह मनुष्य के रूप में इस पृथ्वी पर मृगा की तरह घास चर रहा है। कितनी करारी मार है मनुष्य के लिए! मनुष्य चाहे तो अपने जीवन को महान बना सकता है।

सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं कि मनुष्य गुणों के नाते सर्वश्रेष्ठ है। “मानुष गुण अवगुण को त्यागे।” मनुष्य का गुण है अवगुणों का त्याग करना। अपने अन्दर अवलोकन करें कि क्या-क्या अवगुण हैं। खोज-खोजकर उनका त्याग करें। लोग कहते हैं गलत न बोलो अच्छा बोलो। डबल मेहनत करने की कोई जरूरत नहीं है। आप सिर्फ गलत बोलना बन्द कर दें, अच्छा अपने आप बोलेंगे। लोग कहते हैं कि सत्य बोलो, असत्य न बोलो। आप सिर्फ असत्य बोलना छोड़ दें, अपने आप सत्य बोलेंगे। लोग कहते हैं पाप न करो पुण्य करो। सिर्फ पाप करना बन्द कर दें, पुण्य अपने

आप करने लग जायेंगे। लोग कहते हैं कटु न बोलो मीठा बोलो। आप कटु बोलना छोड़ दीजिये, मीठा अपने-आप बोलेंगे। आप हर जगह गलत पक्ष को छोड़ दीजिए। अच्छा पक्ष अपनाने के लिए अलग से मेहनत नहीं करनी पड़ेगी, सहज हो जायेगा।

एक कलाकार अनगढ़ पत्थर को लेकर उसके गलत अंशों को छील-छीलकर निकाल देता है तो उसका अच्छा स्वरूप निखर जाता है और वह भगवान बन जाता है। परन्तु यह मनुष्य अपने सुन्दर स्वरूप को खराब कर लेता है।

मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, क्योंकि मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है। मनुष्य के पास विकसित मन है। विकसित मन होने के नाते उसमें सदैव विकास की सम्भावना रहती है। वह हर क्षेत्र में विकास करता है। मनुष्य के अलावा अन्य जितने प्राणी हैं उनके अन्दर विकास की सम्भावना नहीं है। प्रकृति की ओर से उनको जीने का जो ढंग मिला है उसमें बदलाव या परिवर्तन वे नहीं कर सकते हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, प्रजनन का तरीका हजारों साल पहले जैसा था, वैसा ही आज भी है और वैसा ही आगे भी रहेगा, क्योंकि उनमें मन, वाणी, बुद्धि का विकास नहीं है।

परन्तु मनुष्य आज विज्ञान के युग में विकास की चरम सीमा तक पहुंच गया है। आज से हजारों साल पहले जंगल में तथा झोपड़ी में रहता था। परन्तु आज घर, मकान, बिल्डिंग आदि में रहता है। पैदल चलता था परन्तु आज अनेक संसाधन बना लिया है। एक घण्टे में हजारों किलोमीटर यात्रा कर सकता है। यह विकास की सम्भावना होने के नाते ही हुआ। जानवर अपने आप का न उत्थान कर सकता है और न पतन। उसका स्वाभाविक जीवन है। वह न अच्छा समझ सकता है न बुरा समझ सकता है। परन्तु मनुष्य अपने जीवन में सद्गुण, सदाचार, धर्म तथा भक्ति आदि के पथ पर चलकर अपना कल्याण कर सकता है। पशुओं में ऐसी कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए मनुष्य खानी को सर्वश्रेष्ठ खानी और मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है।

हंसा ऐसो गुरुमत भारी

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संतसमाज प्रिय सज्जनो तथा देवियो! सदगुरु श्री रामरहस साहेब ने पंचग्रंथी में जगह-जगह टकसार के शब्द कहे हैं। टकसार के वे शब्द उन्हीं के बनाये हैं अथवा कबीर साहेब के बनाये हैं या किसी अन्य पारखी संत के बनाये हैं, कुछ पता नहीं चलता क्योंकि बीजक में टकसार के शब्द हैं नहीं। आजकल जैसे ऋग्वेद में जो मंत्र नहीं हैं, वे मंत्र यास्क के निरुक्त में हैं और उसमें यही लिखा मिलता है कि इसके स्रोत का पता नहीं चलता है। इसलिए निश्चित है कि वेद की किसी शाखा में वह चलता रहा होगा। आजकल वेद की शाकल शाखा प्रसिद्ध है जो ऋग्वेद है। पंजाब-सिंध के बीच शाकल नाम का क्षेत्र था जहां ह्वेनसांग घूमते-घूमते पहुंचे थे। वहीं के कोई समर्थ ऋषि थे जिनके आश्रम का पाठ ऋग्वेद है जो आजकल प्रचलित है। उसको शाकल संहिता भी कहते हैं। शाकल संहिता में जो मंत्र नहीं हैं ऐसे मंत्र भी यास्क मुनि के निरुक्त में हैं और बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

इसी प्रकार बीजक में वे शब्द तो नहीं हैं लेकिन बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनको श्री रामरहस साहेब ने टकसार के शब्द कहा है। उसी प्रकार का शब्द यह है जिसको मैं आज कहता हूँ—

हंसा ऐसो गुरुमत भारी।

लखे ते भव में आवत नाही, भव के बहोत बेगारी।
शिष्य सिखापन गुरु की माने, गुरु साधुन के आज्ञाकारी।
तेई मुक्ति पदारथ पावे, यमते रहनि निन्यारी।
सत्य भेष सत्य रहनि साधु की, संत दरस अविकारी।
ते अधिकारी गुरु पारख के, निर्जिव धोख निवारी।
गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसै आनन्द अटारी।
प्रेम भाव साधुन सेवकाई, कहहिं कबीर पुकारी।

“हंसा ऐसो गुरुमत भारी”—जो निर्णय वचन है वह कबीर का वचन है। कबीर के नाम से अगर निर्णय

वचन है तो वह कबीर का है और अगर निर्णय वचन नहीं है तो कबीर का वचन हो तो भी कबीर का वचन नहीं है। उसको तो किसी ने बनाकर कबीर की छाप लगा दिया है। कबीर शब्द से प्रिय नहीं हैं किंतु निर्णय से प्रिय हैं। श्री पूरण साहेब ने कहा है—

परख साधु गुरु परख कबीर, पारख पद पहिचान।

पारख के प्रताप ते, सब भ्रम जाला मान

“परख साधु गुरु”—साधु-गुरु क्यों प्रिय हैं? परख के नाते। वे पारखी हों, परख कर असत्य को छोड़ें और सत्य को ग्रहण करें। परख के नाते ही साधु प्रिय हैं और परख के नाते ही गुरु प्रिय हैं। “परख कबीर”—कबीर भी क्यों प्रिय हैं? परख के नाते। वे परखकर सार लेते हैं और असार को छोड़ देते हैं इसीलिए कबीर प्रिय हैं। अगर कबीर परख न करें तो वे प्रिय क्यों हों? तब किसी देह से क्या प्रेम हो, किसी नाम से क्यों प्रेम हो। कबीर इसलिए कबीर हैं और प्रिय हैं कि वे परख करते हैं।

“पारख पद पहिचान”—इसलिए ऐ शिष्य! पारख पद को पहचानो। पारख पद है निर्णय पद। पारख पद है निजस्वरूप। यह चेतन ही तो निजस्वरूप, पारखस्वरूप है। “पारख के प्रताप ते सब भ्रम जाला मान”—पारख के प्रताप से सभी भ्रमजाल को काट दो।

“हंसा ऐसो गुरुमत भारी”—श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि ऐ हंस! गुरुमत ऐसा भारी है। भारतीय परम्परा में आत्मा को हंस कहा गया है और विवेकी पुरुष को हंस कहा गया है।

वेद में “हंस” शब्द है और वैदिक साहित्य में भी “हंस” यदा-कदा है लेकिन कबीर वाणी में “हंस” शब्द का बहुत प्रयोग है। वे बहुत बार हंस कहे हैं—“हंसा हो चित चेतु सकेरा।” “हंस बकु देखा एक रंग” आदि।

हंस का अर्थ है विवेकी। साहेब कहते हैं कि ऐ विवेकियो! गुरुमत इतना भारी है। गुरुमत का अर्थ ही होता है गरिष्ठ, श्रेष्ठ, गंभीर। गुरु वही है जो अचल मुकाम में ठहर गया हो। चेला बनाने से कोई गुरु नहीं हो जाता। चेला बनाने वाला तो व्यावसायिक गुरु है। व्यवसाय का मतलब है गतिविधि, काम-धंधा। शिष्यों को, भक्तों को धर्म के रास्ते में लगाने के लिए दीक्षा का विधान होता है और दीक्षा का यह विधान हर जगह है।

एक बार की बात है। मैं फ़ैजाबाद से बस में बैठकर बस्ती के लिए चला। पास में कम्युनिस्ट विचारों के एक सज्जन बैठे थे।

उन्होंने मुझसे पूछा—“महाराज, आप किस सम्प्रदाय के हैं।” मैंने बताया—“मनुष्य सम्प्रदाय के।”

उन्होंने फिर पूछा—“नहीं महाराज, कुछ सम्प्रदाय होता है और उसका कुछ चिह्न होता है। आपका भी कोई सम्प्रदाय तो होगा ही।”

मैंने कहा कि चिह्न तो हर जगह होता है और सम्प्रदाय भी हर जगह होता है। देखिये, जो राजनीतिक पार्टियां हैं वे भी सम्प्रदाय ही हैं। उनके भी एक-एक चिह्न हैं, कांग्रेस का तिरंगा है तो कम्युनिस्टों का हंसिया-हथौड़ा है और लाल झंडा है।

मेरी बात को सुनकर वे मुस्कराये क्योंकि वे स्वयं पकड़ा गये कि वे स्वयं कम्युनिस्ट सम्प्रदाय के हैं। मैंने उनसे कहा कि कम्युनिज्म में भी जब भर्ती हुआ जाता है तब उसका सदस्य बना जाता है। यह सदस्य होना दीक्षा है और सिद्धान्त बताया जाता है। उस सिद्धान्त के अनुसार चलो तो उसमें रहो, नहीं तो बाहर कर दिये जाओगे। मेरे इन तर्कों से वे बहुत प्रभावित हुए और कहे कि महाराज, आप ही को मैं पहला साधु देखा जो इतना बढ़िया तर्क दिया।

दीक्षा कहां नहीं है? सब जगह दीक्षा है। जब लोग लोकसभा या विधानसभा का चुनाव जीत कर दिल्ली या लखनऊ जाते हैं तब उनको राजभवन में जो शपथ ग्रहण करायी जाती है, वह दीक्षा ही है। राष्ट्रपति या राज्यपाल शपथपत्र पढ़ते हैं और सांसद, विधायक उसको दुहराते

हैं और गोपनीयता की शर्त रखवायी जाती है कि “मैं संविधान में तथा देश में आस्था रखूंगा। ऐसा कोई भी काम नहीं करूंगा जिससे देश की अखण्डता और अस्मिता पर आंच आये” तो यह दीक्षा ही है। इसलिए दीक्षा हर जगह है।

समाज को सत्पथ में लगाने के लिए दीक्षा देनी पड़ती है। गुरु बनना कोई बढ़िया चीज नहीं है। गुरु बड़ी जिम्मेदारी का पद है और बिना योग्यता के यदि कोई गुरु बनेगा तो नरक में जायेगा।

लोग गुरुपद के लिए अपने जीवन में नरक करते हैं। उनकी बड़ी लालसा होती है कि मैं गुरु बन जाऊं। उसके लिए वे नाना तिकड़मबाजी करते हैं, अनेक प्रपंच करते हैं। यदि तिकड़म नहीं किये हैं तो भी अहंकार गांठे हैं कि हम तो गुरु हैं। लेकिन बिना योग्यता के गुरु बनना तो नरक को निमंत्रित करना है। विवेक से काम होना चाहिए। आग को छूयेंगे तो जलेंगे। आग से काम कर लें, भोजन बना लें, बत्ती जला लें लेकिन सावधान रहें, नहीं तो जल जायेंगे। यह सब जो व्यावसायिक गुरुत्व है, लोगों को सन्मार्ग में लगाने के लिए है और ठीक है लेकिन जो गुरुपद है उसमें जीवन में एक भी शिष्य बनाने की जरूरत नहीं होती है। उसमें तो शिष्य बनने की जरूरत होती है।

शिष्य का मतलब है जो शासन माने। शासन का मतलब है उपदेश, शिक्षा। “अथ योगानुशासनम्”— यह पतंजलि महाराज कहते हैं। इसका अर्थ है कि अब मैं उस योग का शासन करने जा रहा हूं जिसका शासन पहले से होता आ रहा है। शासन यानी शिक्षा, उपदेश। उपदेश को जो माने वही शिष्य है। कल्याण के लिए शिष्य बनने की जरूरत है, गुरु बनने की जरूरत नहीं है। गुरुत्व, श्रेष्ठत्व तो निष्काम दशा है। सबसे निष्काम हो जाये यही गुरुपद है। यही भारी है, महान है।

जो सबसे निष्काम हो गया है वह महान है लेकिन महानता का अहंकार उसमें होगा ही नहीं। और यह भी कैसे कहा जाये कि वह महान है क्योंकि वे भी अनेक

मानसिक रोग, मानसिक पीड़ा से दुखी थे। नाना कामनाओं में फंसकर पीड़ित थे। उन कामनाओं का त्याग करके सुखी हो गये। इसमें महान होने की कोई बात नहीं है। हां, यह जीवन में बहुत बड़ी घटना है। इसीलिए इसको महान भी कहा जा सकता है।

हम किसी रोग से पीड़ित थे। दवाई और संयम किये तो रोग दूर हो गया। बस सुखी हो गये फिर महान क्या हो गये। अपना रोग दूर कर लिया जाता है तो क्या अहंकार किया जाता है कि हमारा रोग दूर हो गया। मानसिक रोग, मानसिक पीड़ा में जल रहे थे। मानसिक पीड़ा शांत हो गयी तो यही गुरुत्व है। इसमें अहंकार की क्या जरूरत है। गुरुपद निष्काम दशा है इसलिए यह भारी है। साहेब कहते हैं—“हंसा ऐसो गुरुमत भारी”—ऐ हंसो! ऐ विवेकियो! ऐ कल्याणार्थियो! गुरुमत ऐसा भारी है।

मनमत और गुरुमत दो मत हैं। जो अपने मन की कल्पनाओं में उलझा हुआ भटकता है, जो विषय वासनाओं में, अहंकार में, कामना में भटकता है वह मनमती है और जो निर्णय वचन के अनुसार जीवन व्यतीत करता है वह गुरुमती है।

“लखे ते भव में आवत नाहीं, भव के बहोत बेगारी”—जो गुरुमत को लख लेता है वह भव में नहीं आता है। भव में बहुत बेगारी है। भव का अर्थ होता है—होना, गतिविधि होना, चाल होना, क्रिया होना। यह सारा संसार भव है। यहां होता है, बदलता है, निर्मित होता है और मिटता है। इसलिए यह भव है।

बच्चा पैदा हुआ। वह आज गोद में है, साथ है लेकिन यह पता नहीं चलता है कि कब बढ़ गया। बढ़ते-बढ़ते वह इतना बढ़ जाता है कि पिता के बराबर हो जाता है, फिर ढील होता है, कमजोर होता है, जर्जर होता है। यही सब भव है। सारा संसार भव है। सब कुछ बदलता है। इसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है इसलिए हमें तटस्थ रहना चाहिए।

असली भव मन है। मन ही में कुछ होता है। मन ही में राग-द्वेष, हर्ष-शोक, अमर्ष, ममता, बैर-विरोध

होता है। मन ही में दया, क्षमा, शील, विचार की लहरें आती हैं तथा वैराग्य-ज्ञान भी होता है। ये सब मन ही में होता है। मन के विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह ही असली भव हैं। इसमें न बहे तो जानो भवसागर से पार हो गये।

पंडित लोग कहते हैं कि एक वैतरणी नदी है और कहते हैं कि अठारह दिनों में उसे पार करना पड़ता है। वे लोग कहते हैं कि वैतरणी नदी को पार करने के लिए बछिया को छू लो। लोग बछिया को छूते हैं और उसको दान कर देते हैं, यही ‘बछिया छूना’ कहलाता है।

पंडित लोग कहते हैं कि अगर बछिया छू लो यानी बछिया दान कर दो तो मरने के बाद वैतरणी नदी पर वह बछिया आयेगी। उसकी पूंछ पकड़ लो। वह तैरेगी और अठारह दिन तैरकर वह पार पहुंचेगी। ऐसा लिखा है जहां तक मुझे याद है और जहां तक पढ़ा-गुना गया है वही कहता हूं। पंडित लोग बताते हैं कि उस नदी में टट्टी-पेशाब, मवाद-रक्त का पानी बहता है। अब विचार करो कि अठारह दिन तक भला वह बछिया उसमें कैसे तैरेगी? इतने दिनों तक वह क्या खायेगी और कैसे जीवित रहेगी। सुअर तो तैर सकता है क्योंकि वह बलवान होता है और वह गंदा खाता भी रह सकता है लेकिन बछिया कैसे रह पायेगी और तैरेगी। वस्तुतः मन का विकार ही टट्टी-पेशाब, मवाद की तरह है। इसमें सात्त्विक वृत्ति ही बछिया है जिसकी पूंछ पकड़कर इस भवसागर से तर सकते हो। सात्त्विक वृत्ति ही हमारी बछिया है। इसकी पूंछ पकड़ो तो जो काम, क्रोध, राग-द्वेष का मन में मवाद है इसमें वह तैर जायेगी। इसको वह जीत लेगी। सात्त्विक वृत्ति मानसिक विकारों को नष्ट कर देगी।

गुरुमत है आत्मज्ञान और मनमत है देहाभिमान। मनमत है भोग और गुरुमत है योग, त्याग। मनमत है राग-द्वेष करना, गुरुमत है सिर झुकाकर नम्र रहना। कोई आपको बुरा कहता है तो आप सिर झुका लो। आप उसको या किसी को भी बुरा मत कहो, सह लो। जहां विशेष द्वन्द्व हो वहां से हट जाओ लेकिन स्वयं

झगड़ा न करो। गुरुमत है मोक्ष-पथ और मनमत है भोग-पथ। भोग में लड़ना है, मोक्ष में लड़ना नहीं है। जितना भोगी बनोगे, उतना लड़ोगे। जितना त्यागी बनोगे, उतना लड़ना खत्म होगा। अनादि काल से लड़ते-लड़ते ही आये हो और कितना दुख भोगे हो। अगर कल्याण चाहते हो तो अब लड़ना छोड़ दो और सिर झुका लो, नमस्कार कर लो और हट जाओ लेकिन लड़ो मत।

मानसिक विकार भव है। संसार ही भव है। यह बदलता है और इसमें हम कमजोर मन के हैं तो इसका प्रभाव पड़ता है। जो हमने बनाया है वह खराब हो जाये तो हम दुखी होते हैं। मकान का एक हिस्सा टूट गया। दीवार की एक ईंट खिसक गयी या मकान गिर गया तो मकान को कोई कष्ट नहीं है लेकिन हम कष्टित हो गये क्योंकि हमारी मान्यता उसमें बनी है। अगर इतना ही कष्ट है कि, यह गिर गयी और इसकी मरम्मत कर दे तो यह व्यावहारिक है। जो बनाया गया है वह इसलिए नहीं बनाया गया है कि खराब हो जाये। यदि खराब हो गया और कष्ट हो रहा है तो व्यावहारिक दृष्टि से ठीक है लेकिन वह कष्ट हलका होना चाहिए। मरम्मत कर दे बस काम हो गया। परन्तु यदि उसमें व्याकुलता है तब बंधन है।

यह जो बाहर का संसार है यह भी भव है। इसमें भी आपकी सावधानी होनी चाहिए कि इसमें आप छू न जायें, उद्वेलित न हो जायें। अपनी जो जिम्मेदारी है उसे निभा दें। आपका जो कर्तव्य है उसको निभा दें और निर्विकार रहें बस। असली भव है मन का विकार। “लखे ते भव में आवत नाही”—साहेब कहते हैं कि गुरुमत जिसने लख लिया—देख लिया, गुरु का उपदेश जिसने माना और सिर झुकाकर, नम्र होकर, समर्पित होकर उस पर चल दिया वह संसार में फिर नहीं आता है। वह इस भव में फिर नहीं आता है।

हमारा मन यदि दुनिया में कहीं अटका है तो फिर दुनिया में आना पड़ेगा। यदि दुनिया में कहीं नहीं अटककर अपने में अटका है तो बस मुक्त है। बाहर की चमक-दमक सब झूठी है। इसीलिए कबीर साहेब ने कहा—

झूठ झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार।

तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार

देह और देह सम्बन्धी सारा सम्बन्ध झूठ है। जो आज रहे और कल न रहे वह सच कहाँ है। अपनी जगह पर वह सच है लेकिन वह बदलनेवाला और खो जानेवाला है। इसलिए अंततः वह झूठ है। “झूठ झूठा कै डारहू”—वह झूठ है और उसको झूठ समझकर उसका मोह छोड़ दो। “मिथ्या यह संसार”—यह संसार मिथ्या है। मिथ्या का मतलब है कि सारहीन है। इसमें कोई सार नहीं है। ऐसे-ऐसे महंत हुए हैं जो कुकर्म करके महंत हुए हैं। लेकिन महंत होने पर उनको इतनी पीड़ा हुई कि उनके कुकर्मों का द्रन्ध उनको कचोटने लगा इसलिए वे व्याकुल हो गये। फिर उसको वे छोड़ दिये। कहीं भी, जितने भी अंश में कोई कुकर्म करेगा तो उसको जलने के सिवा कुछ है नहीं। वह चालबाजी करेगा, राग-द्वेष करेगा, कोई षड्यंत्र करेगा, कलह-कल्पना करेगा, मन में मैल लायेगा और जलेगा इसके अलावा और कोई चारा नहीं है। कल्याण का रास्ता है कि निर्मल हृदय रहो। निष्कपट रहो और कुटिलता रहित रहो।

“भव के बहुत बेगारी”—भव के बहुत बेगारी है। जो आज के नौजवान लोग हैं वे बेगारी देखे नहीं हैं केवल सुने हैं लेकिन बूढ़े लोग देखे हैं। मैं स्वयं ही बेगार देखा हूँ और बेगारी लेने वाले के वचन सुना हूँ।

जमींदारी का समय था। उस समय शाम को ही जमींदार लोग अपने-अपने आसामियों को जो गरीब लोग होते थे, बता देते थे कि अमुक खेत में आना है वहां निदाई करना है या धान बैठाना है। कोई भी काम हो बता दिया जाता था और अगले दिन दिनभर उनसे बेगारी लेते थे, बिना मजदूरी दिये काम लेते थे।

आसामी लोग सुबह जमींदार के यहां पहुंच जाते थे और जमींदार उनसे काम लेते थे। दोपहर को घुना अरहर या ऐसे ही कोई सड़ा-गला अन्न उबालकर थोड़ा-थोड़ा दे देते थे जिससे वे काम कर सकें। बेगार लोग उसको खा लेते थे, पानी पी लेते थे और फिर शाम

तक काम करते थे। शाम को मालिक लोग कह देते थे कि अब जाओ और कल तुम्हें और आना है। जो नहीं आयेगा मारते-मारते उसकी चमड़ी उधेड़ दूंगा, यह समझ लेना।

जो शीलवान होते थे उनके भी वचन मैंने सुने हैं। वे कहते थे कि भाई, कल भी आओ क्योंकि कल और तुम लोगों को सहयोग करना है। उनकी भाषा तो सभ्य रहती थी लेकिन बात वही रहती थी। अगर न आयें तो वहां भी वे पीटे जाते थे।

दुनिया में बड़ी-बड़ी कपट कतरनी है। “भव के बहुत बेगारी”—साहेब कहते हैं कि भव में बहुत बेगारी है। बेगारी उसे कहते हैं जिसमें कुछ न मिले और काम करना पड़े। आप विचार कीजिए, क्या ऐसे ही जीवन में आप बेगारी नहीं कर रहे हैं, क्या आपको कुछ मिलता है? आप जब से जन्म लिये हैं, तब से आपको क्या मिला। आप जन्म लिये, पढ़े-लिखे, विवाह-शादी किये, बाल-बच्चे पैदा किये, घर-द्वार बनाये, पढ़ाये-लिखाये, उनकी शादी किये, पोते-परपोते हुए अब उनको संभाल रहे हैं। उनसे झगड़ा और कलह के सिवा आप पा क्या रहे हैं?

अगर आपने गुरुशरण नहीं ली, साधना नहीं की, स्वरूप को नहीं पहचाना तो क्या किया। यह कितना गलत है कि अपने उद्धार का काम आप नहीं कर रहे हैं, बल्कि एक नशा में जीवन बिता रहे हैं। अगर इस जोश में आप हैं कि मेरे लड़के हैं, मेरे धन है, मेरे महल है, मेरे क्या नहीं है तो यह जोश एक दिन उतर जायेगा और आपको केवल बिलबिलाना पड़ेगा। इसके सिवाय और कुछ न मिलेगा यह पक्का समझ लीजिए।

एक भगत थे जो हमेशा अपने पोतों को डांटते रहते थे। मैंने एक बार उनसे कहा कि सब अपना काम कर रहे हैं। तुम क्यों इतना भड़भड़ा रहे हो। तब इलाहाबाद में ही मैं रह रहा था। मैंने उनसे कहा कि तुम आओ और यहां कुछ दिन रहो। एक बार वे दो दिन के लिए यहां आये थे और वह भी अपने निजी कार्य से ही आये थे। तब मैंने उनको थोड़ा डांटकर कहा कि क्यों उनके पीछे पड़ते और भड़भड़ाते हो। वे सब तो अपने कदमों

पर खड़े हैं। यहां आओ, मेरे पास दस-बीस दिन रहो, साधना करो और शांति से रहो।

मेरी बात को वे सुने तो उत्तर तो नहीं दिये लेकिन उनके चेहरे से मैंने पढ़ लिया कि वे अपने मन में सोचते थे कि साहेब, आप ऐसा क्यों कहते हैं। हमारे पास क्या नहीं है? हम क्यों ऐसे आकर रहें? उनके मन में यह भाव था। कुछ दिन के बाद सुना कि उनको लकवा हो गया।

एक साधु को लेकर मैं उनके पास गया। देखा वे बिस्तर पर पड़े थे और आवाज उनकी साफ नहीं थी। वे जो बोलते थे उसका अर्थ उनका पोता बताता था। मैंने उनको समझाया कि अब घबराओ मत। दो दिन मैं उनके यहां रहा।

उन्होंने कहा कि साहेब, क्या मैं अच्छा हो जाऊंगा। मैंने कहा कि अच्छा होने की कल्पना क्यों करते हो। मन को अच्छा करो जो आपके वश में है तो फिर रोने लगे। मन को तो अच्छा नहीं करना है। इच्छा है कि अच्छा हो जाऊं और फिर लोगों को डांटने लगूं और अहंता-ममता करने लगूं। वे अपने मन को अच्छा करने की जरूरत नहीं समझ रहे थे। अपने मन को अच्छा करने की जरूरत है। मैंने उनको कहा कि शरीर को अच्छा करने की क्यों सोचते हो, मन को अच्छा करो। लेकिन यह तो मैं जानता ही था कि अच्छा न होगा। मैं लौट आया और कुछ दिन के बाद सुना कि वे मर गये।

दो वर्ष बाद फिर जब वहां गया तो एक पुरवा से दूसरे पुरवा को मैं जा रहा था। उनके भतीजे मेरे साथ चल रहे थे। उनसे मैंने पूछा कि यहीं कहीं तुम्हारे चाचा का दाह-संस्कार हुआ होगा। उन्होंने कहा कि हां साहेब, इसी बाग में तो हुआ है लेकिन ख्याल नहीं है कि कहां हुआ था। दो ही वर्ष बीते थे और उनके भतीजे को यह भी पता नहीं था कि उनका दाह कहां हुआ था। यह पोल-पट्टी है नाम की।

लोगों में यह आशा होती है कि हमारे बाल-बच्चे हमारा नाम रोशन करेंगे। अरे भाई, नाम कुछ है ही नहीं तब रोशन किसको करेंगे। नाम तो सब झूठ है। इस शरीर का नाम गुरुजी ने रख दिया ‘अभिलाष’। यह नाम

तो इस शरीर को पहचानने के लिए है। 'अभिलाष' तो कुछ है ही नहीं और यह शरीर भी कुछ नहीं है। आजकल में ही यह गल जायेगा और मिट्टी में मिलकर खत्म हो जायेगा। 'अभिलाष' चार अक्षर जोड़कर बना लिया गया है और है बिलकुल झूठ। इसी प्रकार सारे नाम और सारे अक्षर झूठ हैं। किसका कौन-सा नाम चलेगा। किसी का नाम नहीं चलेगा लेकिन आदमी जीवन भर भ्रम में ही जीता है।

गृहस्थ तो भ्रम में जीते ही हैं, साधु भी भ्रम में जीते हैं। दोनों के लिए श्री रामरहस साहेब ने गुरुपारख का रास्ता बताया। उनकी 'पंचग्रंथी' अत्यन्त मनन करने लायक है। उसमें उन्होंने कहा है कि गृही फंसे हैं और साधु फंसे हैं। गृही और साधु दोनों के लिए गुरुपारख ही रास्ता है। साधु का भेष धर लिये तो इतने ही से मुक्त थोड़े हो गये। हां, कुछ प्रपंच से मुक्त हो गये लेकिन अभी न जाने कितना कूड़ा-कचरा अंदर भरा है। वह सब देखना है और उसको निकालना है।

साहेब कहते हैं कि भव की बेगारी बहुत है। माया की बहुत बेगारी है। इसकी बेगारी में पड़कर जिंदगी भर मारे अहंकार के नाक रगड़ते रहो कि हम तो "यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं।" मैंने इतनी जमीन ले ली, इतनी दुकान बढ़ा ली और इतनी बड़ी बिल्डिंग बना ली और ऐसी कार खरीद ली। हमारे लड़के-बच्चे ऐसे हैं—वैसे हैं—इस प्रकार की डींग हांकते रहो लेकिन चार दिन के बाद वही लड़के-बच्चे रुलायेंगे और लड़के-बच्चे बेचारे क्या रुलायेंगे, अहंकारवश आप ही रोओगे। यहां यदि अहंकार किया गया तो समझ लो कि रो-रोकर मरना है। सब रो-रोकर मरते हैं। जो रो-रोकर न मरे, प्रसन्न और आनन्दमग्न रहे, वही समझदार है।

साधक को चाहिए कि वह जिसको बंधन समझे उसको छोड़ देने में कोई देर न करे। कोई भी बंधन अगर दिखे तो उसको छोड़ देने में कोई दया-मया नहीं करना चाहिए। शरीर अंत में रहनेवाला नहीं है। मैं यहां रह रहा हूं। आज से दो वर्ष पूर्व मैंने एक बार कहा था कि अगर मैं गलत करता हूं तो यहां मैं रहने का अधिकारी नहीं हूं और यहां के लोग गलत करने लग जायें, रास्ते पर न आवें तो भी मुझे यहां रहने की कोई

जरूरत नहीं है। शरीर है तो आजकल में उसे छुटना ही है इसलिए इसके अहंकार को पहले ही छोड़ देना चाहिए। जीवन में शांति बड़ी चीज है। इसलिए शांति में कोई भंग नहीं पड़ना चाहिए। जन्म-जन्म का पुरुषार्थ हुआ है तब यह सौभाग्य हुआ है जो अनूठी शांति मिली है। अब क्या उसको कहीं किसी के मोह में लगकर खो दिया जाये!

भव की बहुत बेगारी हैं और सब लोग बेगारी सह रहे हैं और समझ रहे हैं कि हम बड़ी उन्नति कर रहे हैं। कुछ माटी-गोबर बटोरकर समझ रहे हैं कि हम बड़ा विकास कर रहे हैं। हम कुछ ईंट-पाथर बटोर कर आश्रम बना लिये हैं। इसलिए समझ रहे हैं कि हम तो कृतार्थ हो गये हैं। हम इस आश्रम से कृतार्थ नहीं हैं। कृतार्थ तो वह है जिसका मन निर्मल है। कृतार्थ तो वह है जो आत्मस्थ है। जो दिव्य धाम में है, अंतर्ज्योति में है वही सुखी है। आत्मारूपी अंतर्ज्योति में जो निमग्न है और जिसने अखण्ड धन पाया है, वही धनी है।

"शिष्य सिखापन गुरु की माने, गुरु साधुन के आज्ञाकारी"—शिष्य गुरु का सिखापन माने। गुरु जो रास्ता बताते हैं उसको शिष्य विनम्र होकर माने और उस पर चले। "गुरु साधुन के आज्ञाकारी"—गुरु और साधु का आज्ञाकारी रहे। गुरु जो रास्ता बतावें उसको विनम्र होकर माने, उस पर चले और अहंकार न करे। जो साधु-संत मठ, मंदिर और समाज, जहां-जहां जिम्मेदारी लिये हैं वहां-वहां सेवा करें लेकिन अपने को कोई मालिक न माने, ताबेदार माने। हम लोग ताबेदार हैं। गुरु एक पद है। गुरु एक व्यक्ति है और उसका अर्थ है कि वह निष्काम और कृतार्थ रूप है लेकिन उसके ऊपर भी गुरु है, विधान है और नियम है। व्यक्ति-गुरु उच्छृंखल नहीं होगा। उच्छृंखल होगा तब गुरु कैसा?

जो ईश्वर-भक्त हैं और परोक्ष ईश्वर मानते हैं, वे कहते हैं कि सब प्रभु का है, मेरा कुछ नहीं है। मैं तो सेवक हूं। लेकिन विवेकी कहेगा कि सब गुरु का है मेरा क्या है। मैं तो ताबेदार हूं। तो ताबेदार बनकर सेवा करो, मालिक न बनो। जहां मालिक बने कि नरक भोगोगे, कलह करोगे, द्वेष करोगे। अगर आप अपने को

मालिक मानोगे तब आप बड़ा बनने के चक्कर में पड़ोगे, एक दूसरे को लंगड़ी मारोगे कि वह गिर जाये और मैं उठ जाऊँ। फिर शुरू होगा नरक! नरक!! नरक!!! यह मानो कि तुम एक ताबेदार हो, एक सेवादर हो। ताबेदार बनो। सेवक बनो। अपने को सेवक मानो।

आपका कुछ नहीं है। गृहस्थों को भी चाहिए कि घर में समूह की कोई चीज है उसको समझे कि वह ट्रस्ट की चीज है, हमारा कुछ नहीं है। अगर कहीं यह मानने लगे कि सब मेरा है, तब गड़बड़ है। वह यह माने कि सब ट्रस्ट का है। जैसे मैंने यह संस्था स्थापित की और इसमें यह सब कार्यक्रम हो रहा है। मुझे यह नहीं मानना चाहिए कि मैंने यह सब किया। मैंने क्या किया? सब लोग किये हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। यह सब ट्रस्ट का है। मेरा कुछ भी नहीं है। यदि संताप न चाहो तो हर जगह अपने को बिलकुल न्यूट्रल करो, बिलकुल अलग करो।

“सोई मुक्ति पदारथ पावे, यमते रहनि निनारी”— जिसकी यम से अलग रहनी है वही मुक्ति-पदार्थ पायेगा। गृहस्थ लोग घर-परिवार को सजा सकते हैं लेकिन मुक्ति नहीं पायेंगे। साधु लोग मठ और धन सजा सकते हैं और प्रचार-प्रसार कर सकते हैं लेकिन मुक्ति नहीं पायेंगे। मुक्ति तो तब पायेंगे जब “यम ते रहनि निनारी”—यम से अलग रहनी होगी। वासना से अलग रहनी होगी। अहंता-ममता से अलग रहनी होगी। यह जो मन की मलिनता है इससे अलग रहनी होगी, तब मुक्ति-पदार्थ मिलेगा।

मुक्ति मुक्ति सब कहै, मुक्ति लखै न कोय।

अपने से जो पृथक है, मुक्ति ताहि तजि होय

श्री विशाल साहेब कहते हैं कि मुक्ति-मुक्ति तो सब कहते हैं लेकिन मुक्ति को समझते नहीं हैं। जो अपने से अलग है उसका अहंकार-ममकार छोड़ देने से मुक्ति होती है। मुक्ति क्या कोई पाने की चीज है। सब अहंकार छोड़ दो बस मुक्त ही हो।

“सत्य भेष सत्य रहनि साधु की, संत दशा अविकारी। ते अधिकारी गुरु पारख के, निर्जिव धोख

निवारी”—संत दशा निर्विकार दशा है। संत तो हम बन जाते हैं। ओढ़ लिये हम संत का कपड़ा और बन गये संत और पूजा-विदाई के लिए लड़ रहे हैं। हमारे कार्यक्रमों में ऐसे भी साधु आते हैं जो कहते हैं—साहेब, हमारी पूजा कम हुई है। हम पचास वर्ष के साधु हैं। वे अपने को साधु माने हैं, संत माने हैं लेकिन भला संत ऐसा कब कहेगा। पूजा जहां की जाती है वहां जो सच्चा संत होगा, पूजा उसको न भी मिले तो वह बोलेगा ही नहीं कि मुझे पैसा नहीं मिला है लेकिन अब ऐसे-ऐसे संत हैं जो कहते हैं कि हम तो पचास वर्ष के संत हैं। हम क्या किसी से कम हैं!

इस प्रकार संत क्या मिलते हैं, लड़नेवाले ही मिलते हैं। वे एकदम लड़ जाते हैं और कलह कर लेते हैं। ऐसे-ऐसे संतनामधारी हैं जो साधु के नाम पर कलंक हैं। संत का कपड़ा ओढ़ लेने से कोई साधु-संत नहीं हो जाता। संत की दशा तो अविकारी है।

“ते अधिकारी गुरुपारख के, निर्जिव धोख निवारी”—वे गुरु पारख के अधिकारी हैं क्योंकि उनका ‘निर्जिव धोख’ मिट जाता है। निर्जीव पिण्डियों को पूजने की उनकी प्रवृत्ति खत्म हो जाती है। निर्जीव जड़ पदार्थों के प्रति उनकी ममता खत्म हो जाती है। निर्जीव कल्पनाओं के प्रति उनकी ममता खत्म हो जाती है। जो जीव नहीं है उसका सब तरफ से त्याग कर देते हैं। मतलब है कि जहां तक चेतन-अचेतन में उलझन है, उसके मोह का वह त्याग करता है। हम चारों तरफ कहां उलझते हैं—अचेतन में। शरीर अचेतन है। घर-मठ अचेतन हैं। प्राणियों के शरीर भी अचेतन हैं। हमारे इर्द-गिर्द जो प्राणी हैं उनके शरीर भी अचेतन हैं, जड़ हैं। यह जड़-पसारा जितना है उसका मोह जिसके मन से कट गया—यही है “निर्जिव धोख निवारी।”

“सत्य वेष”—उनका सात्त्विक वेष होता है। सात्त्विक वेष की जरूरत है क्योंकि उससे मन में सात्त्विकता आती है। कुछ कपड़ा पहनना पड़ता है इसलिए कपड़ा चाहिए। कपड़ा स्वास्थ्य की दृष्टि से वही ज्यादा अच्छा माना जाता है जिसके पहनने के बाद शरीर में ज्यादा हवा लगे।

एक बार मैं कलकत्ता में था। अखबार आया तो उसमें छपा था कि कपड़ा ऐसा पहनना चाहिए कि जिससे शरीर में ज्यादा हवा लगे। मेरे पास प्रेमजी आये। मैंने उनको सुनाया कि देखो लिखा है कि कपड़ा वह पहनना चाहिए कि जिससे शरीर में ज्यादा हवा लगे। प्रेमजी ने कहा कि साहेब, तब तो आपका कपड़ा बहुत बढ़िया है। हम लोगों का तो सिला और पूरा ढका रहता है। आपका सिला नहीं खुला रहता है इसलिए आपका बढ़िया है।

वही कपड़ा ज्यादा अच्छा है जिसके पहनने से शरीर में ज्यादा हवा लगे। हम लोगों का कपड़ा सादा है। कहीं उसको सिलना-बुलना नहीं है। एक लंगोटी पहन लिये और ऊपर से कपड़ा ओढ़ लिये। टंडी में थोड़ा सिला कपड़ा पहनना पड़ता है और बाकी समय में ऐसे ही खुला वस्त्र पहनना होता है। संतों ने जो यह सादा वेष निकाला है उसे इसीलिए निकाला है कि एक तो सरल कपड़ा पहनें। कपड़ा तो कुछ पहनना ही चाहिए। इसलिए सादा पहनें और सरल पहनें।

दूसरी बात कि ऐसा वस्त्र पहने कि सात्त्विक भावना उत्पन्न हो। आप ऐसे नंगे हाथ चलें तो सरल रहेंगे और लाठी ले लेंगे तो थोड़ी गरमाहट रहेगी। पिस्तौल ले लेंगे तो और गरमाहट रहेगी। पैदल चलिये खूब सरल रहेंगे। साइकिल में चलेंगे तो थोड़ी गरमी रहेगी। मोटरसाइकिल में रहेंगे तो थोड़ी और गरमी रहेगी। कार में रहेंगे तो और गरमी रहेगी। हवाई जहाज में रहें तो गरमी का क्या पूछना! संग का प्रभाव पड़ता है। किंतु जो विवेकवान है वह कोई गरमी नहीं रखता। वह चाहे मोटर साइकिल पर बैठे या कार में, उसको कोई गरमी नहीं रहेगी। गरमी तो मन का विकार है।

ज्यादा ताम-झाम का कपड़ा पहनने से रजोगुणी वृत्ति उत्पन्न होती है। सादा पहनने से सतोगुणी वृत्ति उत्पन्न होती है। अब यह अलग बात है कि विकारी आदमी कितना भी सादा कपड़ा पहने, उसमें कुछ सात्त्विकता न आयेगी और विवेकवान आदमी कोई वैसा कपड़ा पहने जो सात्त्विक न भी हो तो भी उसके मन में कोई विकार पैदा न होगा।

एक कायर आदमी के हाथ में आप बंदूक दे दो तो क्या उसमें वीरता आ जायेगी? नहीं आयेगी। इसलिए केवल वेष काम नहीं करता है लेकिन कुछ कपड़ा पहनना है। इसलिए सादा और सात्त्विक वस्त्र संतों ने निकाला। “सत्य वेष सत रहनी साधु की”—साधु की सतरहनी होती है—किसी को पीड़ा न देना, किसी पर गलत आरोप न करना, किसी की निंदा न करना, सबसे बचाकर चलना और कोई निंदा करे तो उसको सह लेना लेकिन दूसरे की निंदा न करना यह सत रहनी है। “संत दशा अविकारी”—संत दशा ही अविकारी है। विकारहीन निर्मल मन ही संत दशा है। तथागत बुद्ध ने कहा है कि जैसे युद्ध में हाथी पर बाण की जो वर्षा होती है उसको वह सहता है। वैसे ही मैं दुष्टों के वचनों को सहूंगा क्योंकि दुनिया में दुर्जन बहुत हैं।

अपने ग्रंथ धम्मपद के ‘नाग वगो’ में बारम्बार उन्होंने कहा है कि “मैं सहूंगा”। जो प्रशिक्षित हाथी होता है वह राजा के द्वारा सेना में ले जाया जाता है। जो प्रशिक्षित व्यक्ति होता है वही निर्वाण पाता है। अन्य प्रकार के जो यान हैं, सवारी हैं, हाथी, घोड़े, रथ-पालकी आदि ये निर्वाण में नहीं ले जा सकते। इसलिए जो अपने को दमित कर लिया वही निर्वाण में जा सकता है। “संत दशा अविकारी”—संत दशा अविकारी दशा है।

“ते अधिकारी गुरुपारख के”—ऐसे लोग गुरु पारख के अधिकारी हैं। गुरुपारख का मतलब है गुरु जो स्वरूपबोध का उपदेश देते हैं उस स्वरूपबोध के अधिकारी हैं। स्वरूपबोध का अधिकारी कौन है? वही है जिसमें पूर्ण त्याग है, संयम और शील है। जो विनम्र और अहंता-ममता विहीन है वही गुरुपारख का अधिकारी है और वही स्वरूपज्ञान का अधिकारी है। स्वरूप शुद्ध चेतन है। शुद्ध चेतन में स्थित होने का अधिकारी कौन होगा? जो सारा अहंकार छोड़ देगा। वह आदमी स्वरूपज्ञान में क्या स्थिर होगा जो देह का अहंकार किये बैठा है। देह, नाम और रूप का जो अहंकार किये बैठा है वह क्या स्वरूप में ठहरेगा। मन का सब अहंकार जब गल जायेगा तभी वह स्वरूप में

ठहरेगा! अहंता और ममता के पूर्ण अभाव हुए बिना कोई स्वरूप में ठहर नहीं सकता।

“गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसै आनन्द अटारी”—गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद क्या है? गुरुमुख सुख का अर्थ है गुरु के उपदेश के अनुसार चलने का सुख। गुरु का अर्थ है निर्णय। निर्णय के अनुसार चलने का सुख गुरुमुख सुख है जो तथ्य है। तथ्य ही गुरुमुख है। वास्तविकता अर्थात् सच्चाई में ठहरने का सुख गुरुमुख सुख है। सच्चाई क्या है? कुछ मेरा नहीं है। कोई मेरा नहीं है। मैं किसी का नहीं हूँ। यही सच्चाई है और इस सच्चाई का दिन जब आयेगा तब आप कुछ नहीं कर पायेंगे। तब तो बस लाश लिटा देंगे और जो कोई आयेगा वह रोयेगा और कहेगा कि भइया, अब ले चलो गंगा के किनारे। इसलिए इस शरीर के रहते-रहते इस सच्चाई को धारण कर लेना है।

मौत की याद करो। लेट जाओ और समझो कि मर गये हो। इस शरीर के मरे दस दिन हो गये। अब इसमें लोने पड़ गये। गाड़ दिया गया है और यह सड़ गया है। यह शरीर जला दिया गया है और यह जलकर राख हो गया है। सब कुछ मिटा-मिटा है, ऐसी कल्पना करो। इससे मन बहुत शीतल हो जायेगा लेकिन इस कल्पना में आपको भय लगता है और आप कहते हैं कि अरे, चुप रहो, ऐसी बात क्यों करते हो।

लोग मौत की याद नहीं करते हैं, विवाह की याद करते हैं। करो भाई, विवाह की याद करो, राग-रंग की याद करो, सुहाग रात की याद करो तो बैकुण्ठवास हो जाये, लेकिन यह जान लो कि इससे तुम्हारे मन में विकार ही बढ़ेंगे। मन का रागरंग ही बढ़ेगा। कल्याण चाहते हो तो मौत की याद करो क्योंकि वही होनेवाला है। मौत की याद करो जिससे चित्त में शांति आये। अपने चित्त में भंगार बटोरे बैठे हो, झूठा अहंकार लिये बैठे हो। “यह मेरा है-वह मेरा है” इस मिथ्या घमण्ड में कब तक अपने को सड़ाओगे।

“गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसै आनन्द अटारी”—गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद है। यह अनुमान नहीं है कि किसी लोक में चले जायेंगे तो भगवान मिलेगा। यह अनुमान नहीं है कि कहीं हमारे

चारों तरफ भगवान बैठा है। यह अनुमान नहीं है कि कोई धाम है वहां चले जाने से मोक्ष मिल जायेगा बल्कि यह बोध है कि आत्मा ही परमात्मा है। वही मेरा अस्तित्व है। वही मोक्ष धाम है, वही दिव्यधाम है, वही ब्रह्मधाम है, वही साकेतलोक है, गोलोक है, शिवलोक है। वह सब मेरा आत्मलोक ही है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में यही कहा गया है—
“अयमात्माऽयं लोकः इति”—उसका आत्मा ही अपना लोक है। “एतमेवप्रब्राजिनो लोकमिच्छन्तः”—उस लोक की अभिलाषा कर के, “प्रव्रजन्तः”—सब कुछ को त्याग देता है क्योंकि सब कुछ को त्यागे बिना कोई आत्मलोक में पहुंच नहीं सकता। आत्मलोक तो सब समय है। वह तो जहां मैं हूँ वहीं है लेकिन मन जब बाहर अटका रहेगा तो क्या वह भीतर जायेगा? जो बाहर अपने को फंसाये है क्या वह अपने अंदर में ठहर पायेगा? नहीं ठहर पायेगा।

“प्रेमभाव साधुन सेवकाई, कहीं कबीर पुकारी”—
कबीर साहेब पुकारकर कहते हैं। कबीर ही ऐसे संत हैं जो पूरी दुनिया में पुकारकर कहते हैं। उनके कहने का तरीका यही है—“कहीं कबीर पुकारि के।” कबीर साहेब बारम्बार पुकारकर कहते हैं—

कहहिं कबीर पुकारि के, ई ले ऊ ले व्यवहार।

राम नाम जाने बिना, भव बूड़ि मुआ संसार

“प्रेम भाव साधुन सेवकाई”—यह सब जो ऊंची-ऊंची बातें कही गयी हैं ये कब आयेंगी? जब प्रेम उत्पन्न होगा, जब भाव उत्पन्न होगा। आप इसके लिए साधुओं की सेवकाई करो तब होगा, ऐसे नहीं होगा। सेवकाई करते-करते यह भाव आयेगा। काम, क्रोध, लोभ और मोह के लिए दुनिया में जिंदगीभर सेवकाई करके अनादिकाल से नाक रगड़े हो। अब मोक्ष चाहते हो तो “साधुन की सेवकाई” साधुओं की सेवकाई करो। उनके चरणों में पड़ो।

अपने बचपन का एक राजगीर का उदाहरण मैं आपको सुनाता हूँ। वह कबीरपंथी था और हमारे घर टूट-फूट बनाने आता था। वह कहता था कि बाबू, यह जो तुम करते हो, इससे कुछ न होगा। जब कबीर साहेब

को जानोगे तब पता लगेगा कि असलियत क्या है। उसी राजगीर ने एक बार यह कहा था कि देखो “बारह बरस बसो संतों की टोली, तब पाओ एक ठिठोली।’ ठिठोली का अर्थ है—हंसी, विनोदभरी बात। बारह वर्ष जब संतों की संगति में बसोगे तब कहीं एक ठिठोली पाओगे। यह अतिशयोक्ति में कहा गया है। इसका सामान्य अर्थ है कि संतों के चरणों में पड़ जाओ।

बनत-बनत बनि जाये, पड़ा रहे संत के द्वारे।

मुरदा होय टरे नहीं टारे, लाख कहे समुझाय

संतों के चरणों में पड़ जाये और टारे न टारे। लाख कहे, लाख समुझावे तो भी गुरु-संत की शरण न छोड़े। देखो कहा गया है “या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय”—अपने अहंकार को छोड़ दो तो सब दया करेंगे। अहंकार न करो क्योंकि अहंकार करना बहुत गलत है। सेवकाई का काम करो। अपनी योग्यता के अनुसार सेवा का कार्य करो। मान लो यहीं सब आये हो तो यहां की सफाई-स्वच्छता पर ध्यान दो। मोटा से मोटा काम करने में रुचि रखो। कोई गाफिली मत करो। जिसके लायक जो काम हो वह काम करे। सफाई में या अन्य काम में सब प्रकार से सेवापरायण होना चाहिए। कोई आदमी आलसी, निकम्मा और निठल्ला न रहो।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब काम का बंटवारा हुआ तब महाराज श्रीकृष्ण ने अतिथियों के चरण धोने का काम लिया था। यह आदर्श था। अगर यह घटना न भी घटी हो तब भी ऐसा आदर्श देने के लिए लेखक का मन था। और ऐसी घटना कोई दुर्लभ बात भी नहीं है। संत ईसा ने अपने शिष्यों के पैर धोये थे। क्यों धोये, बाईबिल में तो इसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता है। लेकिन कुछ बात रही होगी। इसलिए विनम्रता और सेवा बहुत जरूरी है। “कहैं कबीर साधुन सेवकाई”—संतों की सेवकाई करो तब यह दशा आयेगी।

इसलिए आप सभी साधक संतों-गुरुओं के चरण-शरण लगे और उनकी सेवा करके आत्मबोध प्राप्त करो फिर आत्मस्थिति का अभ्यास करो। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

खुशियों को देखें, कभी खुद में कभी दूसरों में

- ❖ मैदान में खेल रहा बच्चा आसमान में उड़ते जहाज को देखकर उड़ने का सपना देखता है, तो उसी समय ऊपर बैठा पायलट खुले मैदान, खेलते बच्चों को देखकर घर लौटने की सोचता है। आप भले ही अपनी जिंदगी से असंतुष्ट हैं, पर हजारों हैं, जो आप-सा होना चाहते हैं।
- ❖ यदि संपत्ति से ही खुशियां मिलतीं तो सबसे पहले अमीर सड़कों पर नाच रहे होते। पर ऐसी बेफिक्री फटेहाल में भी खुशी-खुशी जिंदगी जी रहे बच्चों में ही देखने को मिलती है।
- ❖ यदि सत्ता से सुरक्षा मिलती, तो नेता और अधिकारी बिना सुरक्षाकर्मियों के चलते दिखाई देते। पर होता यह है कि सादगी और सहज जीने वाले चैन से सो रहे होते हैं।
- ❖ यदि सुंदरता और प्रसिद्धि ही जीवन में अच्छे संबंधों की गारंटी होती तो बड़े-बड़े सेलिब्रिटी दुनिया में खुशहाल शादियों के गवाह होते।
- ❖ जो काम पसंद है, जिस पर विश्वास करते हैं, उसे अवश्य करें। लोग हमारे बारे में क्या सोचते हैं, ये भी हम ही सोचने लगे, तो फिर लोग क्या सोचेंगे!
- ❖ किसी ने जिंदगी से पूछा, तुम इतनी मुश्किल क्यों हो, तो जिंदगी ने कहा तुम आसान व सहज चीजों की कद्र कहां करते हो।
- ❖ जब आप अपने आसपास के लोगों के कारण खुद से और अपने मूल्यों से समझौता करने लगें, तो समझ लें कि दूसरों को बदलने का यही सही समय है।
- ❖ दूसरों में अच्छा देखने से शुरू हुई यात्रा खुद में अच्छाई खोज लेने पर समाप्त होती है।

(साभार : हिन्दुस्तान सितंबर,)